मौन की
मधुरिमा
संयम व मौनरूपी देवता का
मंगलमय अवलंबन लो । बोलना पड़े तो
सारगर्भित, हितकर, औरों को
मान देनेवाली, मधुर वाणी बोलो ।
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी अंक : १५७ जनवरी २००६ मूल्य : रु. ६/-

वणी, जि. यवतमाल (महा.) व रेवाड़ी (हरि.) में सुसंस्कार सिंचन कार्यक्रम तथा सोलापुर (महा.) के आश्रम परिसर में सारस्वत्य मंत्रानुष्ठान करते बच्चे।

पूज्य बापूजी के शिष्यों से स्मृतिवर्धक भ्रामरी प्राणायाम सीखते हुए अनाथ आश्रम, नागपुर (महा.) के बच्चे तथा नेवासा, जि. अहमदनगर (महा.) एवं संबलपुर (उड़ीसा) के नौनिहाल।

पूज्यश्री के शिष्यों द्वारा वैचारिक प्रदूषण हटाने और भगवदानंद बाँटने हेतु निकाली गयी संकीर्तन यात्राएँ व प्रभात फेरियाँ

वीरगंज (नेपाल) | जमशेदपुर (झारखण्ड) | पिंजौर, जि. पंचकुला (हरि.)

बाड़मेर (राज.) | देगलूर, जि. नांदेड़ (महा.) | रायपुर (छ.ग.)

मंगल कलश यात्रा – शिकोहाबाद (जि. फिरोजाबाद, उ.प्र.) | बलांगीर (उड़ीसा) | उदयपुर (राज.)

वर्ष : १६ अंक : १५७ जनवरी २००६ पौष-माघ, वि.सं.२०६२ मूल्य : रु. ६-००

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

❋ साधना-पथ	२
मौन की मधुरिमा	
❋ ज्ञान दीपिका	४
अधर्म के १० सोपान, धर्म के १० लक्षण, नवधा भक्ति	
❋ साधना-प्रकाश	८
उन्नति के सोपान	
❋ विवेक-जागृति	११
हंटरबाज थानेदार से संत रणजीतदास	
❋ भक्ति-भागीरथी	१३
भक्ति के विघ्न	
❋ संतों की मौज	१४
विनोदमात्र व्यवहार...	
❋ आपका मंगल कैसे हो ?	१५
❋ जीवन सौरभ	१६
मन इन्द्री पहुँचे जहाँ बो नहीं मेरा राम	
❋ भक्त-महिमा	१८
कूर्मदास की भगवद्‌भक्ति	
❋ मुक्ति-मंथन	२०
परमात्मप्राप्ति के लिए आवश्यक चार बातें	
❋ कर्तव्य	२१
❋ योगामृत	२२
साधना का विहंग मार्ग : कुंभक	
❋ बीज मंत्रु हरि कीरतनु...	२४
❋ परिप्रश्नेन...	२५
❋ एकादशी माहात्म्य	२६
जया एकादशी	
❋ व्रतनिष्ठा	२७
कैसा प्रेरक है अंतरात्मा !	
❋ संयम की शक्ति	२८
यौवन सुरक्षा से राष्ट्र सुरक्षा-विश्व सुरक्षा	
❋ भक्त-चरित्र	३०
महान भगवद्‌भक्त प्रह्लाद	
❋ शरीर-स्वास्थ्य	३१
शीत ऋतु का व्यापक रोग : बिवाई ❋ कफरोग	
षड्‌रस ❋ बवासीर के रोगियों से हार्दिक प्रार्थना	
❋ संस्था समाचार	३२

मौन की मधुरिमा पृष्ठ : २

पृष्ठ : ४

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : हार्दिक वेबप्रिंट, राणीप और विनय प्रिंटिंग प्रेस, अमदावाद।
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद' श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

मौन की मधुरिमा

सांसारिक शब्दों की अपेक्षा स्तोत्र-पाठ हितकारी है, उसकी अपेक्षा जप विशेष हितकारी है। जप में भी अर्थसहित जप विशेष हितकारी है। उससे भी परम हितकारी है वाचिक-मानसिक मौन। मौन का माधुर्य वाणी में नहीं आ सकता। वाणी का अपव्यय रोककर, मानसिक संकल्प-विकल्पों में शक्ति का क्षय रोकना परम मौन को प्राप्त होना है। बाहर का बोलना वासनाक्षय में बाधक है और भीतर का बोलना (संकल्प-विकल्प) मनोनाश में बाधक है। दोनों प्रकार से बोलना विचार में बाधक है, जिसमें तत्त्वज्ञान भी आ गया। बोलना अर्थात् जबरदस्ती बहिर्मुख होना, बाहर आने का प्रयत्न करना।

(पूज्य बापूजी ने ४० वर्ष पहले ४० दिन का मौन लिया था। अभी ४ वर्ष पहले भी वे थोड़े दिन मौन रहे थे, आप सभीको पता होगा।)

मौन रहना ग्रहण करने की अवस्था है। मौन रहने से ध्यान में अधिक सहायता मिलती है। पीड़ा के वक्त मौन-व्रत रखने से मन को बड़ी शांति मिलती है। किसी जानकार की सलाह लेकर मौन-व्रत और उपवास रखने से बहुत सारे रोग मिटाये जा सकते हैं। मौन-व्रत से मानसिक तनाव दूर होते हैं। मौन से शक्ति की सुरक्षा, संकल्पबल की वृद्धि एवं वाणी के आवेगों पर नियंत्रण होता है। शारीरिक व मानसिक कार्यक्षमता में वृद्धि होती है। मस्तिष्क तथा स्नायुओं पर विश्रांतिदायक प्रभाव पड़ता है।

अपेक्षाएँ कम होने पर ही मौनादि नियम सफल और दृढ़ हो पाते हैं। देखने से (साक्षीभाव से), मौन रहने से काम चल सकता है तो करने, बोलने की क्या आवश्यकता है ? मौन माने न बोलना, न सोचना। कुछ-न-कुछ बोलना या सोचना शक्ति का क्षय करना है। अतः अव्यक्त, शांत, आत्मारामी होकर रहना चाहिए। मन इधर-उधर जाय तो प्रणव (ओंकार) का दीर्घ उच्चारण करके शांत हो जाना चाहिए। इससे ऊर्जा में स्थिरता आयेगी। निःसंकल्प रहना सर्वोपरि दशा है। मौन में आकाशवाणी हो सकती है अर्थात् चिदाकाश परमात्मा से प्रेरणा मिल सकती है। मौन परमात्म-सुख में आनेवाले विघ्नों का विनाशक है। मौन अद्वैत की ओर ले जाता है, जबकि बोलना द्वैत का पोषक है और द्वैत झंझट का पोषक है। मौन समाज के अतिक्रमण में बहुत सहायक है।

योगान्तरायान् मौनेन।

'योग के समस्त विघ्न मौनमात्र से अस्त होने लगते हैं।'

मौनपरायण रहना ही अनेक बाधाओं का समाधान है। मौनपरायण रहने से सहज में मुक्ति मिल सकती है, अन्यथा प्रतिक्रिया में परिस्थिति-परिवर्तन करने से बड़ा विक्षेप हो जायेगा। अभीष्ट परम मौन तदीक्षण (तद् ईक्षण = साक्षीभाव, परमात्म-विचार) से भलीप्रकार प्राप्त हो सकता है; जो न किसीको समझाने से होगा, न स्थानांतरण से, न अन्य किसी युक्ति से। यह तथ्य वाक्संयम, संतोष तथा अन्यता के चिंतन के निषेधार्थ उपयुक्त है।

त्राटक, श्वासोच्छ्वास में अजपा-जप और मौन रहने का दृढ़ निश्चय कुछ ही समय में परम पद में पहुँचा देगा। थोड़े दिनों के कार्य को वर्षों तक न करना क्या बुद्धिमानी है ?

सुख ही तो चाहते हो, शांति ही तो चाहते हो, सदा रहनेवाला सुख ही तो चाहते हो। आलस्य, प्रमाद से बचते हुए सात्त्विक अल्पाहार का सेवन करते हुए सुख-शांति एवं सामर्थ्य देनेवाले मौन का कुछ सप्ताह अवलंबन लो, फिर देखो मौन का मजा और सामर्थ्य। वर्षों तक भटके, कहाँ मिला ? जहाँ नहीं था वहीं गये। अब लौटो मन के द्रष्टा की ओर। मौन का आश्रय, आशा-तृष्णा का त्याग - ये परमात्म-प्रसाद को प्रकट कर देंगे।

एकान्तवासो लघुभोजनादौ मौनं निराशा करणावरोधः।
मुनेरसोः संयमनं षडेते चित्तप्रसादं जनयन्ति शीघ्रम्॥

'एकांत में रहना, अल्पाहार, मौन, कोई आशा न रखना, इन्द्रियसंयम और प्राणायाम - ये छः साधन मुनि को शीघ्र ही चित्त के प्रसाद की प्राप्ति कराते हैं।'

उन ब्रह्मवेत्ता महापुरुषों के अनुभव को अपना अनुभव बना लो, मुक्त हो जाओ। सारी पीड़ाओं से, सारी खटपटों से न्यारा है आत्मपद। इसीमें सारे दुःखों का अंत, सारी शंकाओं का समाधान, सारे बंधनों का अंत है। वर्तमान में रहने से ही तनाव और वासनाएँ निवृत्त होती हैं। मृत्यु का भय इसलिए है कि तुम जैसा जीना चाहते हो, वैसा जी नहीं पा रहे। अहंकार तो मृत्यु व दुःख से डरता ही है।

त्राटक, श्वासोच्छ्वास में अजपा-जप और मौन रहने का दृढ़ निश्चय कुछ ही समय में परम पद में पहुँचा देगा।

बहुत पसारा मत करो
कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया
वे भी गये निरास॥

मौन के माधुर्य और सद्गुरु की कृपा से सत्स्वरूप का साक्षात्कार कर लोगे तो पसारा तुम्हें करना नहीं पड़ेगा, समाज की आवश्यकता से प्रकृति करती रहेगी। बढ़ने पर ममता न होगी, कम होने पर दुःख न होगा। श्रीरामजी की, श्रीकृष्ण की, आत्मारामी संतों की जीवनियों पर दृष्टि डालिये। रामजी का रामराज्य हो गया फिर भी उन्हें कोई अहंता नहीं, कोई ममता नहीं, बस आत्ममौन का माधुर्य... आनंद... परमानंद... भगवान श्रीकृष्ण की स्वर्ण अट्टालिकाएँ डूब रही थीं, फिर भी उनके चित्त में कोई दुःख नहीं। श्रीकृष्ण घोर आंगिरस ऋषि के आश्रम में १३ वर्षों तक मौन रहे थे। बाद में महाभारत के युद्ध की बागडोर सँभाली। उनके मौन से प्रकटी गीता विश्व का आदरणीय सत्शास्त्र हो गया।

महर्षि वेदव्यास की मौन-समाधि से 'श्रीमद्भागवत महापुराण' प्रकटा। स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के मौन-सामर्थ्य से कइयों के मुरझाये दिल खिले, उलझी गुत्थियाँ सुलझीं। श्री रमण महर्षि के मौन से कइयों का दिल शांति व माधुर्य को उपलब्ध हुआ। बोलने और सलाह देने से, घर में खटपट लगाये रखने से जो नहीं हो सकता, वह मौन और समता से सहज में होने लगता है। संयम व मौनरूपी देवता का मंगलमय अवलंबन लो। बोलना पड़े तो सारगर्भित, हितकर, औरों को मान देनेवाली, मौन की मधुरता से मिश्रित वाणी बोलो।

मौनव्रती को वाणी की शक्ति को जप-ध्यान में लगाकर आध्यात्मिक शक्ति में रूपांतरित करना चाहिए।

जप अत्यंत प्रभावशाली साधन है। नित्य निश्चित संख्या में जप करने का नियम लीजिये और उतनी संख्या पूरी किये बिना आसन से मत उठिये। इससे संकल्पबल बढ़ेगा और मन पर नियंत्रण रखने में मदद मिलेगी।

सदा असो माझे अंतरीं वसती। अखंड प्रेम प्रीति गुरुरूपीं॥
गुरुरूपीं मज आत्यंतिक सुख। अवलोकी मुख सर्वकाळ॥
सर्वकाळ मुखीं सद्गुरूचें नाम। आणिक तें काम नाहीं मज॥
नाहीं मज प्रिय सद्गुरुवाचुंनी। दृढनिश्चय मनीं केला असे॥
केला असे प्राणसखा सद्गुरुराजा। मन त्यासी पूजा सदा करी॥

अर्थ : मेरे हृदय में सदा-सर्वदा गुरु के रूप के प्रति अखंड प्रेम एवं प्रीति रहे। गुरु का रूप निहारने से मुझे आत्यंतिक सुख मिलता है। इसलिए मैं सदा उनके श्रीमुख का दर्शन करता रहता हूँ। मेरे मुख में सदा सद्गुरु का दिया हुआ नाम ही रहता है, मुझे और कोई दूसरा काम नहीं। मुझे इस जगत में एक सद्गुरु के सिवा और कोई प्रिय नहीं है। मैंने ऐसा दृढ़ निश्चय किया है कि इस जगत में एक गुरु ही मेरा प्राणसखा, प्राणप्रिय है और मेरा मन सदा उनकी पूजा करता रहता है।

– 'अभंगगाथा'

संत श्री एकनाथजी महाराज
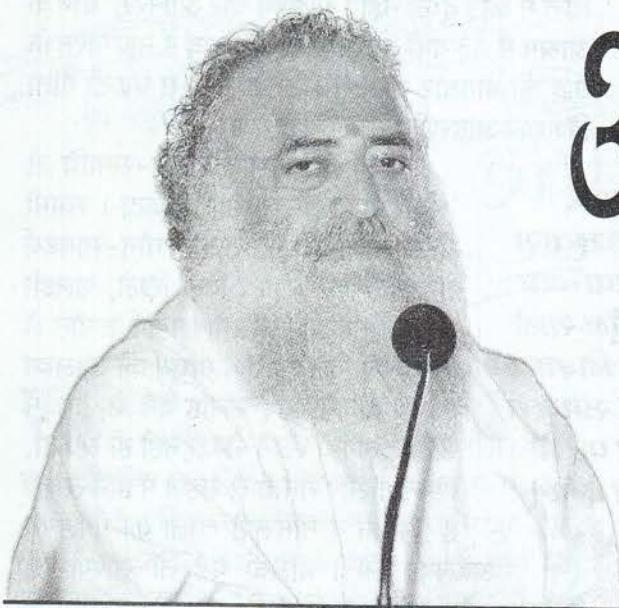
अधर्म के १० सोपान

(सूर्यपुत्री तापी नदी के सुरम्य तट पर स्थित सूरत आश्रम (गुज.) में ४ दिवसीय ध्यान योग साधना शिविर चल रहा है। आज (२५ दिसम्बर ०५) तीसरा दिन है। सायंकालीन संध्या का समय है। चहुँओर गुग्गल धूप से विशाल सत्संग-मंडप का वातावरण सात्त्विक, आरोग्यप्रद, खुशनुमा और साधनामय बना है। पूज्य बापूजी ने हरिनाम संकीर्तन और प्राणायाम कराये, फिर ध्यान की गहराइयों में ले गये। उसके बाद अपनी अनुभवसंपन्न वाणी में तत्त्वज्ञान की गूढ़ बातों का रहस्योद्घाटन किया। इसी दौरान पूज्यश्री ने बताया कि अधर्म के मार्ग में मनुष्य का पदार्पण क्रमशः कैसे होता है। एक-एक पग बढ़ते हुए वह कैसे अधर्म की दलदल में फँस जाता है। अधर्म के इन १० सोपानों से बचने, सावधान रहने की प्रेरणा देते हुए योगनिष्ठ परम पूज्य बापूजी कह रहे हैं :)

यद्यधर्मरतः सङ्गादसतां वाजितेन्द्रियः।
कामात्मा कृपणो लुब्धः स्त्रैणो भूतविहिंसकः॥
पशूनविधिनाऽऽलभ्य प्रेतभूतगणान् यजन्।
नरकानवशो जन्तुर्गत्वा यात्युल्बणं तमः॥
(श्रीमद्भागवत : ११.१०.२७-२८)

जैसे धर्म के सोपान होते हैं, धर्म की सीढ़ियाँ होती हैं, वैसे ही अधर्म की भी सीढ़ियाँ होती हैं।

अधर्म का मार्ग क्या है ? अधर्म कैसे-कैसे अपनी भूमिका को आगे बढ़ाता है - यह देखो।

अधर्म का पहला सोपान है **'असतां सङ्गात्'** - पहले दुष्टों का संग मिलता है। जहाँ संग बिगड़ा वहाँ अधर्म की नींव पड़ गयी। तुम यह देखना कि तुम्हारे जीवन में किसका संग है ? किन लोगों से तुम घिरे हो ? जीवन में जितनी बुरी आदतें आती हैं, उतनी यह पहली भूमिका पुष्ट होती जाती है।

दूसरा सोपान है **'अधर्मरतः'** - अधर्म की वृत्ति में लिप्त हो जाना। 'अमावस्या, पूर्णिमा है तो क्या है ? हम नहीं मानते। इसका, उसका मजा ले लो।' - इससे अधर्म में रति, पाप में रुचि हो जायेगी। शराब पीकर, मांस खाकर मजा लेना - ऐसे पापपूर्ण कर्मों में रुचि हो जायेगी।

फिर तीसरा है **'अजितेन्द्रियः'** - इन्द्रियों को वश न करना, रोकना नहीं। जो आया वह खा लिया, जो आया वह भोग लिया, जैसा आया वैसा कर लिया। यह इन्द्रियों का मजा लेने का जो स्वभाव है, यह अधर्म का तीसरा सोपान है।

जो आप शास्त्र, संत और श्रेष्ठजनों के सामने नहीं कर सकते और जिसे करने में धर्म के संस्कार, अन्तरात्मा रोके-टोके वह छोड़ने की हिम्मत करो।

अधर्म का चौथा सोपान है **'कामात्मा'** कि हमको 'यह चाहिए, वह चाहिए... अमुक चीज होगी तब हम सुखी होंगे।' - इससे क्या आया ? **'कृपणः'** दीनता आ गयी। यह पाँचवाँ सोपान है।

'कामात्मा' होने से 'कृपण' हो गये। पीछे की (भूत की) याद करके दुःखी हो रहे हैं, शोक कर रहे हैं। आगे की (भविष्य की) कल्पना करके 'यह छूट न जाय, वह छूट न जाय, ऐसा न हो जाय' - यह कृपणता आ जायेगी, भय आ जायेगा।

'नौकरी न छूट जाय, बदली न हो जाय, पदोन्नति न रुक जाय, निन्दा न हो जाय, अमुक न रूठ जाय।' - जब

आप नश्वर शरीर के द्वारा नश्वर भोगों में आसक्त होते हैं, अधर्म के द्वारा सुख भोगने लगते हैं तभी ये भय आते हैं। अगर आप धर्म के द्वारा वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति का उपयोग करें, उपभोग नहीं तो अन्दर का सुख और बल बढ़ जायेगा।

पदोन्नति रुक जायेगी तो रुक जायेगी, प्रारब्ध में होगी तो होकर रहेगी, अभी से क्यों तनाव में पड़ें, तना करें ? हजार पदोन्नति होने के बाद भी आत्मा की बढ़ोत्तरी नहीं होती और पदोन्नति रुकने के बाद भी आत्मा की घटोत्तरी नहीं होती, यह जो भी होगा मरनेवाले शरीर के लिए होगा; जो भी मिलेगा, मरनेवाले शरीर को मिलेगा तो उसके लिए डरना क्या ? और छूट भी जाय तो क्या छूटेगा ? छूटेगा वह जो पहले नहीं था, वही छूटेगा। आप अपने मैं को छोड़ नहीं सकते और शरीर को सदा रख नहीं सकते। 'ये न छूट जाय, वो न छूट जाय' - ऐसा भय, तनाव अधर्म के कारण हो जाता है।

अगर आप धर्म के द्वारा वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति का उपयोग करें, उपभोग नहीं तो अन्दर का सुख और बल बढ़ जायेगा।

जिनके स्वभाव में संतत्व नहीं है, शास्त्र-ज्ञान और संयम नहीं है, ऐसे लोगों के संग से जीवात्मा का पतन होता चला जाता है। मकान, व्यवसाय, दुकान, गाड़ी, नौकरी बढ़िया है लेकिन शांति नहीं है, निश्चिंतता नहीं है; भय और तनाव ग्रसते ही रहते हैं। यह असत् का संग है। यह हालत एक-दो आदमी की नहीं है, करोड़ों लोग बेचारे खामखाह दुःखी हो रहे हैं, अकारण परेशान हो रहे हैं, इतनी सुख-सुविधा होते हुए भी पच रहे हैं। भाई-भाई में झगड़ा, पति-पत्नी में झगड़ा, पड़ोसी-पड़ोसी में झगड़ा... 'इसने ऐसा कर दिया, वो वैसा करे-ऐसा करे' - ये कामनाएँ और दुःख जब होते हैं तो समझ लेना कि बेवकूफी के फल हैं। नासमझी का फल है दुःख, नासमझी से दुःख आता है। फिर चाहे भूतकाल को याद करो और शोक करके दुःखी हो, चाहे भविष्य की कल्पना से भय करके दुःखी हो, चाहे वर्तमान में लोलुपता करके राग-द्वेष करके दुःखी हो लेकिन बेवकूफी के बिना दुःख नहीं हो सकता, क्योंकि दुःख प्रकृति ने नहीं बनाया, दुःख परमात्मा ने भी नहीं बनाया और हम भी दुःख नहीं चाहते।

अधर्म की छठवीं सीढ़ी है **'लुब्धः'** अर्थात् लोभ। कैसे भी विषय-विकार से सुख मिला तो और अधिक पाने की लालसा आयेगी तथा उससे बल, बुद्धि, तेज, तंदुरुस्ती नाश हो जायेगी।

सातवाँ है **'स्त्रैण'** अर्थात् स्त्री-पुरुष संबंधों में बँध जाना। 'ये जन्म-जन्म मिलते रहें, ये मेरे कहने में चलें, ये ऐसा न करें।' - ऐसा करके दुःख बनाते हैं। यह भी अधर्म का ही बेटा है।

आठवाँ सोपान है **'भूतविहिंसकः'** अर्थात् दूसरों को दुःख पहुँचाकर भी भोग, मजा और वाहवाही चाहिए। चाहे जनता पीड़ित हो जाय, तप जाय लेकिन अपना कोष भर जाय।

अधर्म की नवमीं सीढ़ी है **'अविधिना'** - शास्त्रविरुद्ध आचरण करना। अला बाँधूँ-बला बाँधूँ... प्रेत-डाकिनी-शाकिनी की उपासना, मांस-शराबवाली साधना करके भी कुछ पाना, किसीका भी अहित करना यह नौवाँ पाप आ जाता है। अब तो महाराज ! क्या मनुष्य और क्या पशु ? अधर्म का दसवाँ सोपान है **'अवशोजन्तुः'** अर्थात् वह पराधीन पशु की तरह हो जाता है, उसमें समझदारी की बात ही नहीं रही।

दुष्टों के संग से (पहले सोपान से) मनुष्य अधर्म में गिरता-गिरता पशु के समान (दसवें सोपानवाला) हो जाता है। अधर्म के इन १० सोपानों से बचना चाहिए।

धर्म के १० लक्षण

धर्म के १० लक्षण मनुष्य को उन्नत कर देते हैं। स्वायंभुव मनुजी ने मनुष्यों को बताया है कि तुम लोग मेरी संतान हो और पिता-पितामह की सम्पदा संतान में आती है, इसलिए कम-से-कम इन दस बातों का तुम ख्याल रखा करो :

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥
(मनुस्मृति : ६.९२)

(१) धैर्य : पहली बात यह है कि यदि कभी तुम्हारे ऊपर कोई संकट आये, विपत्ति आये तो तुम घबराया न करो, किंतु तुम तो मेरे बेटे होकर भी जरा-सा संकट आया नहीं, विपत्ति आयी नहीं कि बेहद घबरा जाते हो। यह हमारे वंश के अनुरूप नहीं है।

देखो, यह बात मनुजी ने यों ही नहीं कही। एक बार वे अपनी पत्नी शतरूपा के साथ सुनन्दा नदी के तट पर तपस्या कर रहे थे। उनको देखकर राक्षस लोग उनको खाने के लिए दौड़े लेकिन वे बिल्कुल घबराये नहीं, अचल हो गये और 'ईशावास्य उपनिषद्' के इस मंत्र का जप करने लगे - **'ईशावास्यमिदं सर्वम्।'** भगवान ने देखा कि ये तो अपने धर्म का ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं और राक्षस लोग इन्हें मार डालना चाहते हैं, तब वे सुदर्शन चक्रधारी भगवान आये और उन्होंने मनु-शतरूपा की

रक्षा की। इसलिए हमारी जो घबराहट है, यह मानव-धर्म के विपरीत है।

मनुष्य का जो पहला धर्म है, वह अपने धैर्य को कायम रखना है। किसी भी हालत में अपना धैर्य नहीं खोना चाहिए। जीवन में रात आती है, दिन आता है; रोग आता है, आरोग्य आता है; सुख आता है, दुःख आता है; हम जिससे मिलना चाहते हैं, कभी वह मिलता है और जिससे नहीं मिलना चाहते, कभी वह मिलता है। किसी भी अवस्था में घबड़ाना नहीं चाहिए। हमारे जीवन की जो गाड़ी है, वह बिल्कुल ठीक-ठीक चलनी चाहिए। यही धर्म है, इसीको 'मनुस्मृति' में 'धृति' के नाम से कहा गया है। धृति माने धारण करना, रोक रखना।

(२) क्षमा : धर्म का दूसरा लक्षण है क्षमा। क्षमा समर्थ पुरुष के भीतर रहती है। किसीने गलती की और हम सोचने लगें कि इसका क्या करें ? तो यह हमारी मजबूरी है। दण्ड देने का सामर्थ्य अपने अन्दर रहने पर भी हम चाहें तो उसको क्षमा कर सकते हैं। क्षमा बलवान मनुष्य का धर्म है, निर्बल मनुष्य क्षमा को कभी अपने जीवन में धारण नहीं कर सकता। लेकिन क्षमा कब होती है ? कभी-कभी हम क्षमा का उलटा व्यवहार करते हैं। उलटा व्यवहार कब होता है ? जब हम स्वयं गलती करते हैं तो सोचते हैं कि 'अच्छा भाई, ऐसा तो होता ही रहता है।' लेकिन दूसरे से गलती हो जाय तो उसके सिर पर सवार हो जाते हैं कि 'तुमने यह गलती क्यों की ?' यह मनुष्यता की सीमा का उल्लंघन है। अपने को क्षमा करने के लिए क्षमा नहीं है, दूसरों को क्षमा करने के लिए क्षमा है। अपने से कोई गलती हो जाय तो उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए, उसके लिए पछताना चाहिए, माफी माँगनी चाहिए। आगे ऐसी गलती नहीं करने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

अनुमान से, युक्ति से, बुद्धि से सिद्ध जो ईश्वर है, वह सही ईश्वर नहीं है क्योंकि दूसरा बड़ा बुद्धिमान होगा तो वह उसका खण्डन कर देगा। अतः बुद्धि से जो अज्ञात है, उसको हमारी बुद्धि में भर देनेवाली वस्तु विद्या ही है।

(३) दम : धर्म का तीसरा लक्षण है दम, मतलब कि उत्तेजना का प्रसंग आने पर भी उत्तेजित नहीं होना। हमें उत्तेजित करनेवाले लोग तो बहुत मिलते हैं, लेकिन हमारे साथ वास्तविक सहृदयता प्रकट करनेवाले बहुत कम हैं।

(४) अस्तेय : चोरी न करना।

(५) शौच अर्थात् पवित्रता : हम प्रातःकाल उठते हैं, उस समय यदि नित्यकर्म आवश्यक हो, लघुशंका-शौच जाना आवश्यक हो तब तो जायें और न जाना हो तो थोड़ी देर बैठकर उस ब्राह्ममुहूर्त का सदुपयोग करें। सूर्योदय से पहले उठें और उठकर पवित्र चिन्तन करें। क्योंकि सोते समय सारी वासनाएँ शांत हो जाती हैं और फिर धीरे-धीरे जीवन में उदय होती हैं। उस समय जबकि अभी सांसारिक वासनाओं का उदय नहीं हुआ है और नींद टूट चुकी है, यदि आप अपने आत्मा के स्वरूप का, सत्य का चिंतन करेंगे तो जैसे दिनभर के लिए बैटरी में बिजली भर लेते हैं, वैसे ही परमात्मा के साथ थोड़ा-सा संबंध होते ही अपने हृदय में उसकी शक्ति का आविर्भाव हो जाता है। यदि प्रातःकाल शरीर में अशुद्धि मालूम होती हो तो स्नान भी कर लें, पर नित्यकर्म के नाम पर खट-पट करने की अपेक्षा पहले परमात्मा का चिंतन करना ही उत्तम है, क्योंकि सबसे पवित्र वस्तु परमात्मा है। परमात्मा के चिंतन से बढ़कर अपने चित्त और जीवन को पवित्र करनेवाली अन्य कोई वस्तु नहीं है।

यदि उस समय एक-दो मिनट भी परमात्मा का स्मरण हो जाय तो सारे दिन के लिए, जीवनभर के लिए बड़ी भारी शक्ति आपको प्राप्त हो जायेगी।

(६) इन्द्रियनिग्रह : धर्म का छठा लक्षण है इन्द्रियनिग्रह, इन्द्रियों पर संयम चाहिए। जैसे घोड़े की बागडोर अपने हाथ में रखते हैं, वैसे ही इन्द्रियों की बागडोर हमारे हाथ में होनी चाहिए। संयम शब्द का अर्थ यही है कि इन्द्रियों के सामने जब कोई आकर्षक वस्तु आ जाय, तब वे अपने वश में रहें, उस पर लुब्ध न हो जायें। यदि न आये तब तो कोई बात ही नहीं है, अन्यथा आँखों के सामने आकर्षक रूप आ जाय, कान में आकर्षक शब्द आ जाय, त्वचा के लिए आकर्षक स्पर्श आ जाय, जिह्वा के लिए आकर्षक भोजन आ जाय, नासिका के लिए आकर्षक सुगंध आ जाय, तब इन सब इन्द्रियों पर अपना नियंत्रण रहे। यहाँ तक कि जब कोई आपकी तारीफ के पुल बाँधने लग जाय, तब आप विचलित न हों। लेकिन यह तो एकांग हुआ। दूसरा अंग भी इसका समझ लें कि निंदा के शब्द आने पर भी, कठोर स्पर्श होने पर भी, कुरूप सामने आने पर भी, जो गंध आपको पसंद नहीं है वही नाक के पास आने पर भी आप अपने को संयम में रख सकते हैं कि नहीं ?

(७) बुद्धि : धर्म का सातवाँ लक्षण है बुद्धि। एक मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी बुद्धि को छोड़े नहीं। **'धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।'** इसमें जो 'धीः' है, इसका अर्थ बुद्धि ही है। धत्ते इति धीः -

जो धारण करे, उसका नाम है धी। **'धीः धारणात्मिका मेधा'** धारणात्मिका बुद्धि का नाम मेधा है। बुद्धि के जो पर्याय हैं, उनमें थोड़ा-थोड़ा फर्क होता है। इतनी भावुकता जीवन में नहीं आ जानी चाहिए कि हम समझदारी से परे हो जायें। भावुकता रहे, प्रेम रहे, भक्ति रहे, परंतु इतनी भावुकता, पक्षपात, इतनी क्रूरता जीवन में आ जाय कि हम समझदारी से अलग हो जायें तो उससे बहुत हानि होती है। धर्म के लक्षणों में जो धर्म हृदय पर अपना स्थायी प्रभाव डालता है, वह हमारे जीवन में बना रहना चाहिए। किंतु वह कर्म, जो तत्काल तो बहुत अच्छा दिखता है, पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं डालता उसकी कोई आवश्यकता नहीं। जीवन में हर समय सावधानी और समझदारी की आवश्यकता रहती है। इसीको धीः कहते हैं।

(८) विद्या : धर्म का आठवाँ लक्षण है विद्या। बुद्धि ऐसी चीज है जिसको हम लोगों से सीख लेते हैं किंतु विद्या बुद्धि से अलग है। जो बात हम अपनी बुद्धि से नहीं जान पाते, उसका ज्ञान देने के लिए विद्या होती है।

विद्या हमारी बुद्धि को संस्कृत करती है। विद्या से ईश्वर का ज्ञान होता है, बुद्धि से नहीं हो सकता। श्रीरामानुज महाराज ने भी कहा है कि बुद्धि में इतनी शक्ति नहीं कि वह ईश्वर को सिद्ध कर सके। उन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' के भाष्य में नैयायिकों के ईश्वर का खण्डन किया है और कहा कि अनुमान से, युक्ति से, बुद्धि से सिद्ध जो ईश्वर है, वह सही ईश्वर नहीं है क्योंकि दूसरा बड़ा बुद्धिमान होगा तो वह उसका खण्डन कर देगा। अतः बुद्धि से जो अज्ञात है, उसको हमारी बुद्धि में भर देनेवाली वस्तु विद्या ही है। वह हमारी बुद्धि का संस्कार करती है।

(९) सत्य : धर्म का नौवाँ लक्षण है सत्य। सत्य बोलने में हमारा एक शाश्वत संबंध निहित रहता है। कोई चाहे कि हम असत्य ही बोलेंगे, असत्य बोलने का ही नियम रखेंगे तो क्या यह संभव है ? ऐसा कोई माई का लाल दुनिया में न हुआ, न होना शक्य है कि वह हमेशा झूठ-ही-झूठ बोले। परंतु कोई जीवन में सत्य बोलने का नियम ले ले कि बोलेंगे तो सत्य ही बोलेंगे, अन्यथा नहीं बोलेंगे तो उसका निर्वाह हो जायेगा। बोलना आवश्यक नहीं है। मौन भी धर्म का एक स्वरूप है। इसलिए बोलना हो तो सत्य बोलना, नहीं तो मौन रहना। दोनों में ही धर्म की स्थिति होगी। धर्म वह हुआ, जो हमारे जीवन में स्थिरता लाता है। उसके माध्यम से हम एक नियम का पालन कर सकते हैं, नियम से रह सकते हैं।

(१०) अक्रोध : धर्म का दसवाँ लक्षण है अक्रोध अर्थात् क्रोध न करना।

हम हमेशा क्रोध में ही रहेंगे यह नियम कोई नहीं ले सकता परंतु अहिंसा का नियम ले तो वह शाश्वत हो सकता है। अहिंसा नियम हो सकती है, स्थिर हो सकती है, व्रत हो सकती है, परंतु हिंसा स्थिर नहीं हो सकती, नियम नहीं हो सकती, व्रत नहीं हो सकती। सत्य और अहिंसा ये दोनों हमें शाश्वत परमात्मा के साथ जोड़ते हैं। इसी तरह कोई यह नियम लेना चाहे कि हम दिन-रात चोरी करते रहेंगे तो नहीं ले सकता परंतु चोरी नहीं करेंगे इस नियम का निर्वाह जीवन में हो सकता है। इससे जीवन में स्थिरता आयेगी, नियंत्रण स्थापित होगा और एक अनंत शाश्वत ब्रह्म के साथ हमारा संबंध जुड़ेगा।

नवधाभक्ति

किसीके जीवन में भक्ति के इन ९ लक्षणों में से एक भी आ जाय तो वह धन्यवाद का पात्र है।

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान ॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा ॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा ॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा ॥
आठवँ जथालाभ संतोषा।
सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा ॥
नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हियँ हरष न दीना ॥

पहली भक्ति है संतों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा-प्रसंग में प्रेम। तीसरी भक्ति है अभिमानरहित होकर गुरु के चरणकमलों की सेवा और चौथी भक्ति है कपट छोड़कर मेरे गुणसमूहों का गान करे। मेरे (राम) मंत्र का जाप और मुझमें दृढ़ विश्वास यह पाँचवीं भक्ति है, जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह, शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र), बहुत कार्यों से वैराग्य और निरंतर संतपुरुषों के धर्म (आचरण) में लगे रहना।

सातवीं भक्ति है जगतभर को समभाव से मुझमें ओतप्रोत (राममय) देखना और संतों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ मिल जाय उसीमें संतोष करना और स्वप्न में भी दूसरों के दोषों को न देखना।

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना तथा किसी भी अवस्था में हर्ष एवं दैन्य (विषाद) का न होना।

(रामचरित. अरण्य.)

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

सावधान रहना कि सांसारिक खुशियाँ आपको बेईमान, चोर, कपटी न बना दें। सांसारिक ऐश आपको जल्दी बूढ़ा न बना दें, इसका ख्याल रखना। इसके लिए अपने जीवन में तीन व्रत लाओ। ये तीन व्रत आयेंगे तो आपका तो मंगल होगा ही, आपके संपर्क में आनेवाले का भी मंगल हो जायेगा।

पहला व्रत यह कि मिले हुए बल का - चाहे धन-बल हो, सत्ता-बल हो, बुद्धि-बल हो; मिली हुई योग्यता का आप दुरुपयोग नहीं करोगे। इस व्रत का पालन करो तो यह आपको खूब पोषित करेगा।

आप बड़े पद पर हो तो किसीको दबाओ नहीं, सताओ नहीं, उसका शोषण नहीं करो। आप डॉक्टर हो तो आपकी योग्यता मरीज के लिए है, अध्यापक हो तो विद्यार्थी के लिए है, गायक हो तो श्रोताओं के लिए है और संत हो तो आपकी योग्यता भक्तों के लिए है। आप अपनी योग्यताओं को योग्य अधिकारियों में बाँटते चले जाओ - यह हो गया मिले हुए बल का, मिली हुई योग्यता का सदुपयोग। अगर मिले हुए बल से, योग्यता से आप धन-दौलत, संपदा, विलासिता बढ़ा रहे हैं तो यह हो जायेगा इनका दुरुपयोग। मिले हुए किसी भी बल का दुरुपयोग न हो तो आपका बल बढ़ता जायेगा।

दूसरा व्रत यह कि अपने विवेक का अनादर न करो। विवेक के विरुद्ध कोई भी कार्य न करो, कदम न उठाओ। हमारा विवेक कहता है कि यह झूठ है, यह अनुचित है फिर भी सुख के लालच में और दुःख के भय में विवेक को दबाकर हम वह कार्य कर लेते हैं तो परिणाम में दुःख आता है। विवेक के विरुद्ध कोई भी आचरण न करो तो परमात्मा दिव्य विवेक देकर साक्षात्कार करने का मार्ग अंदर में ही प्रकट कर देगा।

तीसरा व्रत है कि आप अपने श्रद्धा और विश्वास में विकल्प न आने दें। भगवान हैं कि नहीं, वे प्रार्थना सुनते हैं कि नहीं, जप ठीक होता है कि नहीं - ऐसा संशय नहीं होना चाहिए। भगवान सर्वत्र विद्यमान हैं, सबके परम सुहृद हैं, वे अपने भक्त की प्रार्थना सुनते ही हैं - ऐसी दृढ़ श्रद्धा, दृढ़ विश्वास रखें। जब हम दृढ़ श्रद्धा से मंत्र-जप कर रहे हैं तो जप ठीक ही होगा। विकल्प नहीं लायें, बस प्रीतिपूर्वक जप करते रहें।

पार्वतीजी की श्रद्धा की परीक्षा लेने के लिए सप्त ऋषि आये पर पार्वतीजी ने कहा :

जन्म कोटि लगि रगर हमारी।
बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी ॥
(रामचरित. बा. का. : ८०.३)

करोड़ों जन्मों तक तपस्या करूँगी लेकिन वरूँगी तो शिवजी को ही वरूँगी नहीं तो कुँवारी रहूँगी और दृढ़ श्रद्धा से तपस्या करके पार्वतीजी ने आखिर शिवजी को पा ही लिया।

अगर ये तीन व्रत आपने जीवन में अपना लिये तो ये पाँच महत्त्वपूर्ण बातें भी सफलतापूर्वक कर लोगे।

पहली बात : प्रभु सभीके हैं। आप प्रभु को केवल बापूजी का मत मानिये, केवल पुजारियों का मत मानिये। वे सबके हैं।

दूसरी बात : वे अपने हैं और अपने में हैं।

तीसरी बात : वे अभी भी विद्यमान हैं। उन्हींकी सत्ता से आँखें देखती हैं, जीभ हिलती है, कान सुनते हैं, मन सोचता है, बुद्धि निर्णय करती है। ये सब बदलते रहते हैं, इसको जो जानता है वह कभी नहीं बदलता। वह अबदल परमात्मा पहले भी था, अभी भी है और सदैव रहेगा।

चौथी बात : प्रभु सर्वसमर्थ हैं। वे काल के भी काल हैं, भय देनेवाले को भी भय देनेवाले हैं। आप भले ही कितने भी भयभीत हो जाओ परंतु उनका सुमिरन करो। 'हे भयहारी ! हे काल-के-काल ! हे अकाल पुरुष ! तुम मेरे आत्मा होकर बैठे हो। यह मृत्यु मेरा क्या बिगाड़ेगी ?

दूसरों की निर्बलता के आगे अपने बल की शेखी मत बघारना। दूसरे निर्बल हैं और आपके आगे कुछ कर रहे हैं तो वहाँ आप दम मत मारना। उनकी निर्बलता के कारण आप बलवान हैं। आपसे बड़ा कोई बलवान आये तो आप चूहे की नाईं खिसक जाओगे।

यह तो शरीर का ही बिगाड़ेगी। तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ।' - ऐसा विचारकर विकल्प नहीं लाओ तो मौत की ताकत नहीं जो आपको नीच योनियों में ले जाय। फिर उस प्रभु से मिलने का आपका रास्ता साफ हो गया।

पाँचवीं बात : यह सुमिरन में रखना कि वे प्रभु अद्वितीय हैं। उनकी बराबरी का कोई था नहीं, है नहीं, हो सकता नहीं। अनेक अंतःकरणों में होते हुए भी वे अद्वितीय हैं।

इस प्रकार ये पाँच बातें और तीन व्रत आपने धारण कर लिये तो इन आठों में जब आपकी स्थिति हो जायेगी, तब ग्यारह उपव्रत करने भी आपके लिए आसान हो जायेंगे। वे ग्यारह उपव्रत हैं :

(१) आत्मनिरीक्षण : विवेक से स्वयं का निरीक्षण करना कि हमने जो किया वह ठीक किया या किसीसे धोखा किया अथवा दुःख की, बीमारी की या फरियाद की बात को याद करके जरा-जरा बात में दुःखी हुए।

(२) गलती न दोहराना : की हुई गलती दुबारा न हो यह बड़े-में-बड़ा प्रायश्चित्त है। इसके लिए भगवान से प्रार्थना करें और शांत हो जायें तो आपको गलतियों से बचने का बल मिलेगा।

(३) न्याय अपने साथ; प्रेम, उदारता दूसरों के साथ : हम गलती यह करते हैं कि उदारता अपने साथ और न्याय दूसरों के साथ करते हैं। चाय बनाते समय या सब्जी बनाते समय नौकरानी के हाथ से तपेली गिर जाय तो सेठानी बरस पड़ेगी 'अरे अंधी है क्या ? मूर्ख ! देखती नहीं है... पगार लेती है...' परंतु अपने हाथ से ऐसा हो गया तो बोलेगी : 'चलो, कोई बात नहीं... गिर गयी तो गिर गयी।' तो यह हो गया अपने साथ उदारता और दूसरों के साथ न्याय। आप अपने साथ न्याय और दूसरों के साथ उदारता करें तो जीवन में सद्गुणों का विकास होगा।

(४) इंद्रिय-संयम और भगवच्चिंतन : सुख की लोलुपता के कारण इंद्रियाँ बाह्य विषयों से आकर्षित हो जाती हैं, जिस कारण मन भगवान में नहीं लगता। इसलिए आप चटोरेपन, पफ-पाउडर, पान-

मसाला, शराब, विषय-विकार, व्यसन आदि से बचें, इंद्रियों पर संयम रखें एवं भगवच्चिंतन बढ़ायें।
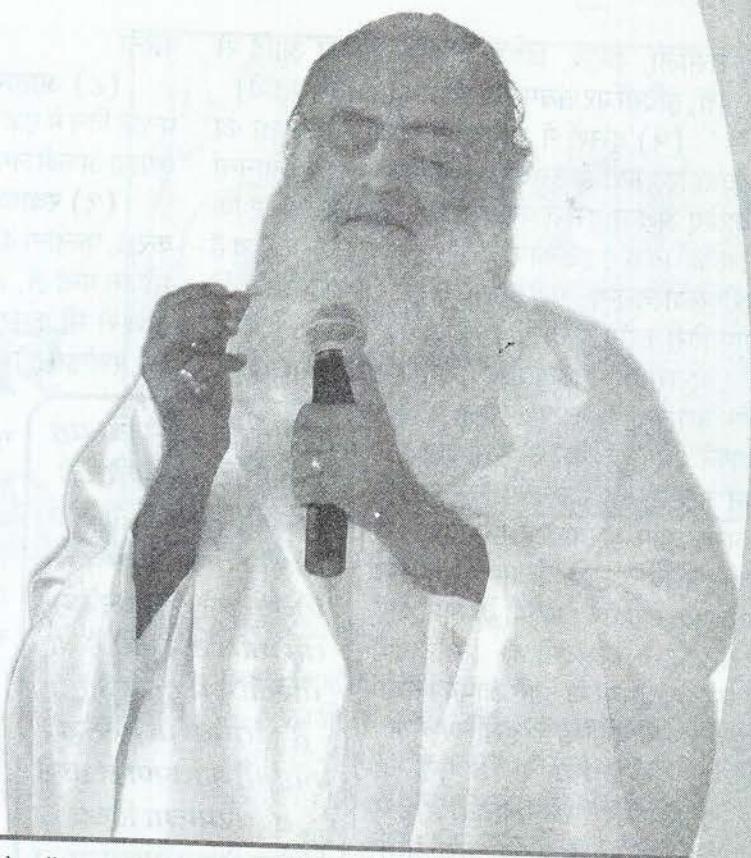
(५) दूसरों ने आपके साथ जो सज्जनता का व्यवहार किया है उसको अपना बड़प्पन नहीं मानना चाहिए अथवा दूसरों पर ऐसा नहीं थोपना चाहिए कि मेरा अधिकार है इसकी सेवा लेना और इसका कर्तव्य है मेरी सेवा करना, मेरी बात मानना । इस प्रकार की थोपागिरी करोगे तो दुःखी हो जाओगे।

दूसरों की निर्बलता के आगे अपने बल की शेखी मत बघारना । दूसरे निर्बल हैं और आपके आगे कुछ कर रहे हैं तो वहाँ आप दम मत मारना । उनकी निर्बलता के कारण आप बलवान हैं । आपसे बड़ा कोई बलवान आये तो आप चूहे की नाईं खिसक जाओगे । गरीबों के आगे आप सेठ हो, बड़े आदमी हो; अमेरिका के बड़े आदमियों के आगे आपका बड़ा-सेठ पना कहाँ है ? इसलिए भूल में मत पड़ना भैया ! कि मेरी चार कोठियाँ हैं... छः कोठियाँ हैं... मेरे दो मकान हैं... मेरे पास पचास नौकर हैं... दो सौ नौकर हैं... पाँच सौ नौकर हैं... दूसरों की निर्बलता को अपना बल मत मानिये । दूसरों की उदारता को अपना सद्गुण मत मानिये । यह भगवान की व्यवस्था है इसका सदुपयोग करो।

विवेक कहता है कि यह झूठ है, यह अनुचित है फिर भी सुख के लालच में और दुःख के भय में विवेक को दबाकर हम वह कार्य कर लेते हैं तो परिणाम में दुःख आता है । विवेक के विरुद्ध कोई भी आचरण न करो तो परमात्मा दिव्य विवेक देकर साक्षात्कार करने का मार्ग अंदर में ही प्रकट कर देगा ।

(६) सभीका मंगल चाहते हुए, सभीसे स्नेह करते हुए, सभीमें एक परमात्मा छुपा है, वह सबका साक्षी है ऐसा **सद्भाव भरते हुए अपने कर्म को कर्मयोग बनाना चाहिए।**

(७) शुभ भावना से तो समाज की सेवा करना ही, साथ ही क्रियात्मक सेवा भी करना।

(८) **आहार-विहार में संयम रखें ।** कभी-कभी पन्द्रह दिन में एक बार उपवास रख लें । खाने में जो वस्तु ज्यादा अच्छी लगती है, उसे बाँटकर खायें।

(९) **स्वावलंबन** : नौकर कपड़े धो दे, पत्नी यह कर दे, फलाना वह कर दे... नहीं, कभी अपने हाथ से भी भोजन बना लें, अपने हाथ से भी कपड़े रगड़ लें, अपने हाथ से भी कमरा साफ कर लें ताकि पत्नी की, नौकर की, रसोइये की पराधीनता जीवन में न घुस पाये।

(१०) पैसे से वस्तु अधिक महत्त्वपूर्ण है । पैसा चबाया-खाया नहीं जाता । पैसा जब छोड़ते हैं तब इच्छित वस्तुएँ मिलती हैं और उपयोग में आती हैं । जो पैसे को अधिक महत्त्व देते हैं, वे कंजूस पैसा रख-रखकर उसके चौकीदार बनके मर जाते हैं।

वस्तुओं का महत्त्व पैसे से ज्यादा है और वस्तुओं से भी ज्यादा महत्त्व है विवेक का; किंतु तुम्हारे सत्यस्वरूप आत्मा-परमात्मा का महत्त्व विवेक से भी ज्यादा है । उसीकी सत्ता से विवेक होता है, उसीकी सत्ता से वस्तुएँ बनती हैं और उसीकी सत्ता से पैसे गिने जाते हैं, इसलिए **सत्यस्वरूप परमात्मा को सबसे अधिक महत्त्व देना।**

आखिरी उपव्रत है : **व्यर्थ का चिंतन छोड़ देना ।** 'इसने ऐसा क्यों किया ?... इसने वैसा क्यों किया ?...' आप रोटी तो अपनी खायें और खोपड़ी दूसरों के लिए खर्चें - ऐसा मत कीजिये । अपनी खोपड़ी में ईश्वर-चिंतन के लिए थोड़ी जगह रखिये तथा विश्रांति पाइये।

जीवन में इन व्रतों के आने से आप विश्रांति के रास्ते शीघ्रता से आगे बढ़ जायेंगे।

कुबेर का सर्वदारिद्र्यनाशक मंत्र

विनियोग : अस्य श्रीकुबेरमन्त्रस्य विश्रवाऋषिर्बृहतीच्छन्दः शिवमित्रधनेश्वरी देवताऽत्मनोऽभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।

मंत्र : ॐ श्रीं ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं क्लीं श्रीं क्लीं वित्तेश्वराय नमः ।

शिवमंदिर में बैठकर श्रद्धापूर्वक इस मंत्र के १० हजार जप करने से धन की वृद्धि होती है । बेल के वृक्ष के नीचे बैठकर इस मंत्र के एक लाख जप करने से धन-धान्य, रूप व समृद्धि प्राप्त होती है। **(मंत्रमहोदधि)**

हंटरबाज थानेदार से संत रणजीतदास

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

एक बार रणजीतसिंह नाम का सिपाही गश्त लगाते-लगाते किन्हीं संत के द्वार पहुँचा और संत से कहा : ''बाबा ! पाय लागूँ।''

बाबा : ''इतनी देर रात को क्यों आये हो ?''

''आपके दर्शन करने।''

''नहीं, सच बताओ क्यों आये हो ?''

''बाबा ! मैं इंटरपास भटक रहा हूँ और थानेदार मजे से पलंग पर आराम कर रहा है। आपकी कृपा हो तो मैं थानेदार बन जाऊँगा।''

''अच्छा समझो, तुम थानेदार बन गये तो मुझे तो भूल जाओगे।''

''नहीं बाबा ! रणजीतसिंह आपके चरणों में सिर झुकायेगा । थानेदार बनूँगा तब भी आपकी आज्ञा पालूँगा।''

''कब पहुँचोगे थाने पर ?''

''बाबा ! गश्त लगाते-लगाते तीसरे दिन मेरी ड्यूटी वहाँ लगेगी।''

''तो जाओ, जाकर थानेदार बनो । तुम्हें वहीं थानेदारी का हुकुम आया मिलेगा।''

''बाबा ! आप लेख पर मेख मार (मिटा) सकते हो, बेमुकद्दरवाले को मुकद्दरवाला बना सकते हो। आप काल के मुँह में पड़े हुए को अकाल ईश्वर की तरफ लगा सकते हो और नरक में जानेवाले जीव को दीक्षा देकर उसके नरक के बंधन काटकर स्वर्ग की यात्रा करा सकते हो। संतों के हाथ में भगवान ने क्या गजब की ताकत दी है ! हे बाबा ! मेरा प्रणाम स्वीकार करो।''

रणजीतसिंह बाबा को दंडवत् प्रणाम कर विदा हुआ। तीसरे दिन थाने पहुँचकर जब उसने थानेदार को सलाम किया तो थानेदार कुर्सी से उठा और बोला :

''रणजीतसिंह ! अब तुम सिपाही नहीं रहे, थानेदार हो गये हो। यह लो सरकारी हुक्मनामा। मेरी बदली दूसरे थाने में हो गयी है।'' रणजीतसिंह ने मन-ही-मन बाबा को प्रणाम किया व थानेदार का दायित्व सँभाला।

कोई छोटा आदमी मुफ्त में बड़ा बन जाय, बिना मेहनत के ऊँचे पद को पा ले तो अपना असली स्वभाव थोड़े छोड़ देता है। रणजीतसिंह ने भी अपना असली स्वभाव दिखाना शुरू कर दिया । वह बड़ा रोबीला, हंटरबाज थानेदार हो गया। लोग 'त्राहिमाम्' पुकार उठे कि 'यह थानेदार है या कोई जालिम ? झूठे केस बना देता है, अमलदारी का उपयोग प्रजा की सेवा के बदले प्रजा के शोषण में करता है।'

एकाध वर्ष बीता-न-बीता सारा इलाका उसके जुल्म से थरथराने लगा। बाबा ने ध्यान लगाकर देखा कि 'रणजीतसिंह कर्म को योग बना रहा है या बंधन बना रहा है अथवा कर्मों के द्वारा खुद को नारकीय योनियों की तरफ ले जा रहा है।' वास्तविकता जानकर बाबा के हृदय को बहुत पीड़ा हुई।

बाबा पहुँच गये थाने पर। उस समय रणजीतसिंह सिगरेट पी रहा था। बाबा को देख सिगरेट फेंक दी और बोला : ''बाबा ! पाय लागूँ। आपकी कृपा से मैं थानेदार

बन गया हूँ।''

''थानेदार तो बन गये हो लेकिन मुझे कुछ दक्षिणा दोगे कि नहीं ?''

''बाबा ! आप हुकुम करो । आपकी बदौलत मैं थानेदार बना हूँ, मुझे याद है। मैं आपको दक्षिणा दूँगा।''

''पाँच सेर बिच्छू मँगवा दो।''

''पाँच सेर बिच्छू !... अच्छा बाबा ! मैं मँगवा देता हूँ। सिपाहियो ! इधर आओ। अपने-अपने इलाके में जाकर बिच्छू इकट्ठे करो और कल शाम तक पाँच सेर बिच्छू हाजिर करना, नहीं तो पता है...''

बाबा ने भी सुन रखा था, हंटरबाज थानेदार है । जिस किसी पर कहर बरसाता है, पैसे लेकर किसी पर भी झूठे केस कर देता है।

जो निर्दोष पर केस करता है अथवा निर्दोष को मारता है उसे बहुत फल भुगतना पड़ता है। बाबा ने सोचा, 'इसने मेरे आगे सिर झुकाया, फिर यमदूतों की मार खाये अच्छा नहीं।'

सिपाही बेचारे काँपते-काँपते गये। इधर-उधर खूब भटके और दूसरे दिन पाँच-छः बिच्छू ले आये।

रणजीतसिंह : ''अरे मूर्खो ! पाँच सेर बिच्छू की जगह केवल पाँच-छः बिच्छू !''

''साहब ! नहीं मिलते हैं।''

तब तक बाबा भी आ गये और बोले : ''कहाँ हैं पाँच सेर बिच्छू ?''

''बाबा नहीं मिल पाये।''

''तू अपने को इस इलाके का बड़ा थानेदार, तीसमारखाँ क्यों मानता है रे ? चल, मैं तेरे को बिच्छू दिलाता हूँ । इकबाल हुसैन बड़ा रोबीला, हंटरबाज थानेदार था। झूठे केस करने में माहिर था वह बदमाश। चल, उसकी कब्र खोद।''

जुल्म करना पाप है, जुल्म सहना दुगना पाप है। आप जुल्म करना नहीं, जुल्म सहना नहीं। कोई जुल्म करता है तो संगठित होकर अपने साथियों की, अपने मुहल्ले की, अपने बच्चों की रक्षा करना आपका कर्तव्य है।

आप सच्चे हृदय से भगवान को पुकारो और ओंकार का जप करो । मजाल है कि दुश्मन अथवा जुल्मी, आततायी आप पर जुल्म करे, हरगिज नहीं।

थानेदार इकबाल हुसैन की कब्र खोदी गयी। देखा कि लाश के ऊपर-नीचे हजारों बिच्छू घूम रहे हैं। यह घटित घटना है।

बाबा : ''भर ले बिच्छू। दो-तीन मटके ले जा।''

''बाबा ! यह क्या ? इतने सारे बिच्छू !''

''रणजीतसिंह ! जो जुल्म करता है, उसका मांस बिच्छू ही खाते हैं और वह बिच्छू-योनि में ही भटकता है। देख ले तू। तू उसी रास्ते जा रहा है।''

''राम-राम-राम... ! क्या हंटरबाज थानेदार होने का फल यही है ?''

''यह नहीं तो और क्या है ?''

जिथ साईं दा हक तुराड़ा दोह सवाबां तुले
उथां सभु हिसाब भरेसीं क्या पतशाह क्या गोले
सिर कामल उत वेंदे कंबंदे कल क्या करसी मोले लेखो कहंदा ज़ोर न चले अबऊं आदा बोले।

अर्थात् जहाँ ईश्वर के न्याय की तराजू पापों और पुण्यों का तकाजा करती है, वहाँ राजा हो या प्रजा प्रत्येक को हिसाब देना है। वहाँ तो कामिल पुरुष (परमात्मा के प्यारे) भी कुछ नहीं कह सकेंगे।

कर्म की गति बड़ी गहन है। **अवश्यं भोक्तव्यं कृतं शुभमाशुभम्** । 'शुभ-अशुभ कर्म का फल मनुष्य को अवश्य भुगतना पड़ता है।'

''बाबा ! फिर...?''

''फिर क्या ? पहले के कर्म काट ले और अभी भी ईश्वर के रास्ते चल। हंटरबाज बनकर, रिश्वत लेकर, झूठे केस बनाकर देख लिया; अब सच्चा केस बना, ईश्वर को पाने के रास्ते चल। रणजीतसिंह ! **सुमति कुमति सब कें उर रहहीं**। सज्जनता-दुर्जनता सबके अंदर रहती है। तुमने दुर्जनता जगाकर देख ली, अब सज्जनता को अपना ले। ले दीक्षा और गंगा किनारे जा। दे दे इस्तीफा।''

राजा भर्तृहरि राजपाट छोड़कर गुरु गोरखनाथ के चरणों में चले गये; दीक्षा लेकर साधना की और महापुरुष हो गये। वह बहादुर थानेदार भी गुरु की आज्ञा मानकर बारह साल हरिद्वार में रहा और रणजीतसिंह सिपाही से संत रणजीतदास बन गया; भगवान की भक्ति करते हुए अमर पद को पा लिया, बिल्कुल पक्की बात है।

मैं तो रणजीतसिंह सिपाही को शाबाशी दूँगा, जो गुरुकृपा से एक साधारण सिपाही में से थानेदार बना और गुरु की आज्ञा का पालन किया तो संतों की जिह्वा तक उसका नाम पहुँच गया। कितना भाग्यशाली रहा होगा वह !

मानना पड़ता है, अच्छाइयाँ-बुराइयाँ सबके अंदर होती हैं, बुद्धिमान वह है जो सत्संग करके अच्छाइयाँ बढ़ाता जाय और बुराइयाँ छोड़ता जाय।

भक्ति के विघ्न

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

संत सुंदरदासजी ने कहा है :

प्रेम भक्ति यह मैं कही, जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घटि ऐसी होइ ॥

प्रेमाभक्ति जिस हृदय में प्रकट होती है उस हृदय से दोष निवृत्त हो जाते हैं । प्रेमरस नित्य नवीन रस है । तत्त्वज्ञान से शांत रस में स्थिति होती है, भक्ति-भाव से नित्य नवीन प्रेमरस उभरता है । उसकी जितनी सुरक्षा की जाय, उतना ही बढ़ता जाता है और अगर लापरवाह हो गये तो क्षीण हो जाता है।

इस प्रेमाभक्ति में आत्म-अनुसंधान, भगवद्-अनुसंधान त्याग विघ्नरूप हैं। संसारी, भोगी, वासनावाले व्यक्तियों का संग भी भक्तिरस क्षीण करनेवाला है। भक्त अगर अपनी भक्ति की सुरक्षा चाहता है तो उसे कुसंग और कुवृत्तियों का त्याग करना चाहिए।

भक्त के जीवन में ये पाँच बातें नहीं सुहातीं : ईर्ष्या, घृणा, भय, लज्जा और निंदा। जो भक्त अपने जीवन में से इन पाँचों को निकालने में लगता है, उसकी भक्ति खिलती है, दृढ़ होती जाती है व नित्य नवीन रस प्रदान करती है।

अगर प्रेमी भक्त ईर्ष्यावृत्ति रखता है तो उसकी प्रेमाभक्ति क्षीण होती है। इसलिए चित्त से ईर्ष्या व घृणा को निकाल फेंके। इनको निकालने से प्रेमाभक्ति पुष्ट होगी।

चित्त से भय को भी निकाल दें। भक्ति के रास्ते जाना है तो थोड़ी हिम्मत जुटानी पड़ेगी । 'ऐसा नहीं करेंगे तो फलाना क्या कहेगा ? ऐसा व्यवहार नहीं करेंगे तो फलाने रूठ तो नहीं जायेंगे ।'- इस प्रकार के भय को त्याग के दृढ़तापूर्वक भक्ति में लगे रहना चाहिए।

जो निर्भय है वह भक्ति, ज्ञान, ध्यान में सफल होता है। व्यवहार में भी जो निर्भय है वह सफल होता है। चोर-डाकू-लुटेरे भी तभी सफल होते हैं, जब उनमें निर्भयता का गुण आता है। हालाँकि वे इस गुण का दुरुपयोग करते हैं।

गुरु अर्जुनदेव कहते हैं :
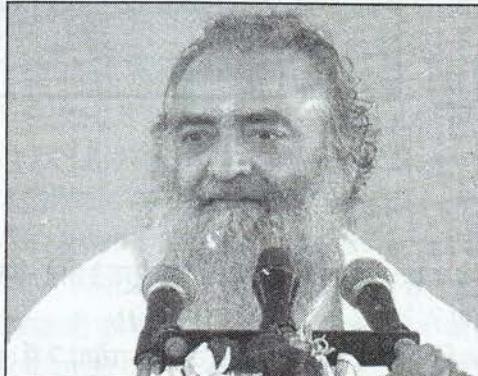
निरभउ जपै सकल भय मिटे। प्रभ किरपा ते प्राणी छुटे॥

लज्जा भी भक्ति में बाधक है । मीरा अगर लज्जा करती तो अपने प्यारे के लिए नाच नहीं पाती, प्रेमाभक्ति को उभार नहीं पाती। 'लोग क्या कहेंगे ?'- इस बात पर शबरी अगर अटकी रहती तो भक्तिरस का आस्वादन नहीं कर पाती, भगवान को खींच नहीं पाती। भक्त के मन में लज्जावृत्ति आ जाय तो मन को समझाना चाहिए कि -

नहीं रोक सकता कोई दुनिया की जबानों को ।
ये हानि-लाभ, यश-अपयश तेरी भक्ति को बढ़ाते हैं॥
अगर दिल में सच्चाई है तो कोई क्या बिगाड़ेगा ?
जो हैं कमजोर दिल के, उन्हें दुनिया डराती है ॥

भक्ति के रास्ते दृढ़ता से चलना है तो दिल को मजबूत बनाओ। भय और लज्जा से मुक्त होकर चलो।

किसीकी भी निंदा न करो, न सुनो। निंदा करने या सुनने से भी शांत रस, प्रेमरस क्षीण होता है।

भगवान कहते हैं : 'परम श्रद्धा से युक्त होकर जो मेरी उपासना करते हैं वे मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ योगी हैं।'

जिसको परमात्मा के सिवा कुछ नहीं चाहिए, 'परमात्मा का अनुभव ही सार है' - ऐसा जो समझ बैठा है और जिसका परमात्मा में प्रेम है, उसके नाम में प्रेम है, उसको पाये हुए महापुरुषों के प्रति प्रेम है, वह परमात्मा में मन लगाने में सफल हो जाता है। आत्मज्ञानी महापुरुषों में, ईश्वर में, भगवन्नाम में और गीता-उपनिषद् आदि सत्शास्त्रों में यदि श्रद्धा-प्रीति हो तो हँसते-खेलते बेड़ा पार हो जाता है।

नानक सतिगुरि भेटिऐ पूरी होवै जुगति।
हसंदिआ खेलंदिआ पैनंदिआ
खावंदिआ विचे होवै मुकति ॥

'हे नानक ! यदि सद्गुरु मिल जायें तो जीने की ठीक विधि आ जाती है और हँसते, खेलते, खाते-पहनते हुए माया में लिप्त हो काम-काज करते हुए ही कामादिक विकारों से बचे रहते हैं।' **(गुरुग्रंथ साहिब)**

विनोदमात्र व्यवहार...

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

मोकलपुर के बाबा एक ब्रह्मज्ञानी संत थे। बड़ी ऊँची कमाई के धनी थे वे महापुरुष। अपने विभु स्वभाव को जानते थे कि 'मैं तो निराकार व्यापक चैतन्य आत्मा हूँ। जहाँ सुख भी नहीं दुःख भी नहीं, पुण्य भी नहीं पाप भी नहीं... सूर्य, चंद्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि मेरे ही स्वरूप में व्याप रहे हैं।' ऐसे ऊँचे अनुभव में जगे हुए महापुरुष थे वे।

एक बार वे जहाँ भिक्षा माँगने गये, वहाँ एक कुम्हारिन रो रही थी कि 'हाय-रे-हाय! मेरा तो सर्वस्व चला गया।'

बाबा ने पूछा : ''क्या बात है ?''

कुम्हारिन : ''मेरे पति मर गये हैं।''

''तेरा पति कुम्हार था। वह घड़े बनाता था। उसके भी तो घड़े फूटते होंगे, फिर यह ब्रह्माजी का घड़ा फूट गया तो क्या हुआ ?''

''बाबाजी ! यह तो ठीक है, अब मिट्टी कौन लायेगा ? घड़े कौन बनायेगा ? मैं अकेली स्त्री क्या करूँगी ? कहाँ जाऊँगी ?''

पति की मृत्यु पर स्त्री पति के लिए नहीं रोती, अपने सुख के लिए रोती है। कोई किसीके लिए नहीं रोता, सब अपने सुख के लिए रोते हैं। बाबा ने कहा :

''ठहर-ठहर, रो मत। मिट्टी ही लानी है तो हम ला देंगे।''

''घड़े कौन बनायेगा ?''

''घड़े भी हम ही बना देंगे।''

''बेचेगा कौन ?''

''अरे, जब हम बना देंगे तो फिर बेचने में क्या घाटा है ? दाम ही तो बताने हैं कि यह ६ पैसे का है, यह ४ का... और क्या करना है ?''

बाबा कुम्हारिन के यहाँ रह गये। गधे पर मिट्टी लाते, उसको रौंदते और फिर घड़े बनाते, ऐसा करते-करते ३-४ दिन बीत गये। भक्तों को हुआ कि 'बाबाजी भिक्षा लेकर अभी तक नहीं आये, क्या बात है ?'

पूछताछ करते-करते पता चला कि बाबाजी कुम्हारवाड़ी में कुम्हारिन को सांत्वना
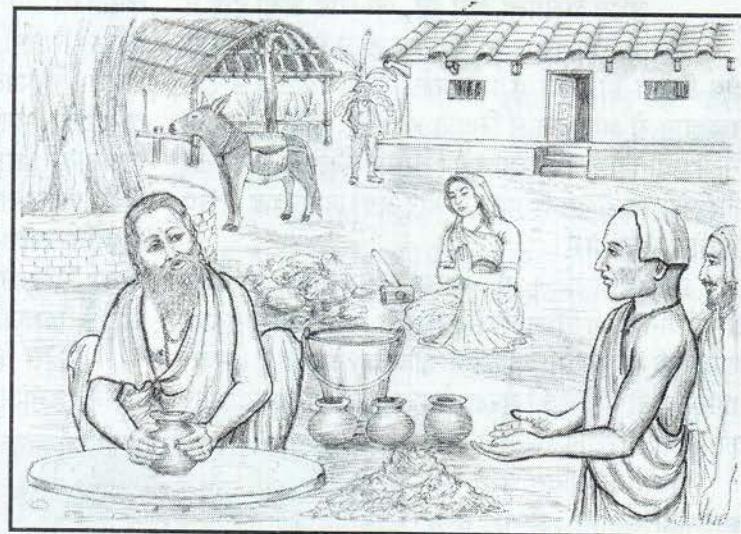
जिन्होंने अपने विभु स्वरूप को जाना है, उनको पुण्य-पाप, सुख-दुःख का कर्ता-भोक्तापन छूता तक नहीं है। 'सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता मैं नहीं हूँ।' - ऐसा ज्ञान होने से वे संसार में निर्लेप रहते हैं।

देने के लिए कुम्हार का काम करने लगे हैं। शिष्य वहाँ पहुँचे और बाबा से बोले : ''यह आप क्या कर रहे हैं ?''

बाबा : ''आजकल हम ब्रह्माजी बन गये हैं। यह बेटी रो रही थी कि 'मेरा पति मर गया है तो घड़े कौन बनायेगा ?' हमने कहा कि हम बना देंगे।'' तब कुम्हारिन को पता चला कि ये तो आत्मधन के धनी कोई महापुरुष हैं ! उसने उनसे क्षमा माँगी।

घाटवाले बाबा मेरे मित्र संत थे। जगद्‌गुरु शंकराचार्य जैसी हस्तियाँ उनके चरण छूने आती थीं। जब वे जंगल में जाते और कोई घोड़ेवाला या भैंसवाला बोलता कि ''बाबा ! जंगल में जाते हो, हमारा घोड़ा उधर निकल गया है, दिखे तो हाँक दीजियो या जंगल में हमारी भैंस दिखे तो हाँक दीजियो।''

वे कहते : ''ठीक है।''

उन्हें घोड़ा या भैंस दिखती तो हाँक भी देते थे। कहाँ तो आत्मा-परमात्मा को पाये हुए महापुरुष और कहाँ भैंस हाँक रहे हैं ! घोड़ा हाँक रहे हैं ! उनके लिए तो सब विनोदमात्र हो जाता है। उनको ऐसा नहीं होता कि यह छोटा काम है, यह बड़ा काम है। घड़ीभर के लिए हो गया परोपकार का विनोदमात्र व्यवहार। परोपकार के लिए ब्रह्मज्ञानी सेनापति हो सकता है, राजा हो सकता है, किसीके यहाँ मिट्टी भी उठा सकता है... अष्टावक्रजी कहते हैं : **तस्य तुलना केन जायते ?** ऐसे महापुरुष की तुलना किससे की जा सकती है ?

श्रीकृष्ण छछियनभरी छाछ पर भी नाच लेते हैं और सोने की द्वारिका का राज्य भी कर लेते हैं; कंस जैसे बड़े-बड़े योद्धाओं को मार भी देते हैं और कालयवन के आगे सब कुछ छोड़कर नंगे पैर भागना पड़ता है तो भाग भी लेते हैं। भागते हैं तो कायर होकर नहीं, लीला करते हुए भागते हैं। धर्म की स्थापना के लिए सारी चेष्टाएँ करते हैं वे। जिन्होंने अपने विभु स्वरूप को जाना है, उनको पुण्य-पाप, सुख-दुःख का कर्ता-भोक्तापन छूता तक नहीं है। 'सुख-दुःख का कर्ता-भोक्ता मैं नहीं हूँ।' - ऐसा ज्ञान होने से वे संसार में निर्लेप रहते हैं।

आपका मंगल कैसे हो ?

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

अपना मंगल चाहते हो तो दूसरे की भलाई करो, दूसरों के मंगल में लग जाओ। जो दोगे वही घूमकर आपके पास आयेगा। शास्त्र के अनुरूप, धर्म के अनुरूप दूसरों के मंगल में लग जाओ। जो दूसरों के मंगल में लग जाता है - क्या उसका अमंगल हो सकता है, अमंगल टिक सकता है ? उस आदमी का दुःख कभी नहीं मिट सकता, जो खुद को सुखी रखना चाहता है। यह क्रांतिकारी वचन है, बिल्कुल पक्की बात है। उस आदमी का दुःख कभी नहीं मिट सकता, जो अपने सुख के लिए ललकता है। अपने सुख की ललक छोड़कर आप दूसरे के दुःख मिटाने में लग जाओ, दुःखहारी की सत्ता आपको निर्दुःख कर देगी।

अपने दुःख में रोनेवाले मुस्कराना सीख ले।
औरों के दुःख दर्द में आँसू बहाना सीख ले॥
आप खाने में मजा नहीं जो औरों को खिलाने में है।
जिंदगी है चार दिन की तू किसीके काम आना सीख ले॥

उपभोग करके बाहर का सुख भीतर भरने से आप बोझीले हो जाओगे। बाहर के सुख का सदुपयोग करो और अंदर के सुख को जाग्रत करो। आप सुख अंदर मत भरो, अंदर के सुख को बाहर बिखेरो। सुख बाँटो, आत्मसंतोष पाओ। सुख आधिभौतिक है, आत्मसंतोष आध्यात्मिक है। बाहर से सुख लेने की इच्छा मत करो, बाहर सुख बाँटने का कार्य करो; मान लेने की इच्छा मत करो, मान के योग्य कर्म करो तो आप स्वतंत्र, सुखी हो जाओगे, चिरआदरणीय हो जाओगे।

✻ आलसी सुखी नहीं हो सकता, निद्रालु विद्याभ्यासी नहीं हो सकता, ममत्व रखनेवाला वैराग्यवान नहीं हो सकता और हिंसक दयालु नहीं हो सकता।

मन इन्द्री पहुँचे जहाँ बो

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

हरियाणा में रेवाड़ी जिले के नारनौल क्षेत्र के एक सज्जन नितानंदजी तहसीलदार थे । उनकी पहली पत्नी बीमारी के कारण मर गयी । परिवारवालों ने उनकी दूसरी शादी करवा दी । दूसरी पत्नी संसारी विचारोंवाली थी । वह उनको सांसारिक विकारों में गिराना चाहती थी पर नितानंदजी सत्संगी, संयमी थे । किसी संत के यहाँ रहते और ध्यान-भजन करते ।

पत्नी ने देखा कि 'ये मेरे साथ बोलते नहीं । मेरे पास आते नहीं, कुछ करते नहीं ।' तो वह उन संत के यहाँ गयी और नितानंदजी के ध्यान-भजन करने की चौकी पर बैठ गयी । पत्नी की कामविकार भरी हिलचाल, नखरेबाजी देख नितानंदजी को बड़ी ग्लानि हुई कि 'ईश्वर के रास्ते खुद तो चलती नहीं और मैं ध्यान-भजन करता हूँ तो मेरे कमरे में घुसकर चौकी पर जाकर बैठ गयी ।' थोड़े समय के बाद पत्नी बीमार हुई और मर गयी तथा पिता की धन-संपत्ति चोर चुराकर ले गये ।

संत लोग वो दे देते हैं, जो चौरासी लाख जन्मों के पाप-ताप मिटाके जीव को जीते-जी मुक्ति का अनुभव करा देता है ।

नितानंदजी को संत का सान्निध्य मिला था, अतः इन घटनाओं से विवेक-वैराग्य और बढ़ गया।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥

'संपत्ति, शरीर सब अनित्य हैं, नश्वर हैं । सत् का वैभव ही शाश्वत एवं नित्य है । मृत्यु नित्य है अर्थात् मनुष्य एक-न-एक दिन अवश्य मरेगा । अतः उसे धर्मसंग्रह में प्रवृत्त हो जाना चाहिए ।' **(चाणक्य नीति : १२.१२)**

'श्रीमद्भगवद्गीता' (५.२२) में आता है :

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

'इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले भोग यद्यपि विषयी पुरुषों को सुखरूप भासते हैं, पर हैं वे सब दुःख के ही हेतु और आदि-अंत वाले (अनित्य) हैं। बुद्धिमान-विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता ।'

बढ़िया मकान हो, गाड़ी हो, पत्नी बढ़िया हो, बढ़िया बैंक बैलेंस हो, बढ़िया मजा लूँ... इस बढ़िया-बढ़िया में ही जीव बेचारा खप जाता है और अंत में दुःखद योनियों को पाता है । जो शाश्वत है, नित्य अपने साथ रहनेवाला है, जिसको पाने के बाद कुछ पाना बाकी नहीं रह जाता, उस आत्मा को तो वह जानता नहीं; उसको जाने तो बेड़ा पार हो जाय ।

नितानंदजी ने मन में ठान लिया कि मैं तो सत्-चित्-आनंद स्वरूप उस परम पुरुष परमात्मा को ही पाऊँगा । वे अपने नाना सितावराय के यहाँ रेवाड़ी में आ गये । वहाँ उनकी भेंट एक उच्चकोटि के संत गुमानीदासजी से हुई । उन्होंने नितानंदजी को गुरुमंत्र की दीक्षा दी ।

सद्गुरु द्वारा मिला मंत्र चेतन होता है । अशुद्ध आत्माओं को दूर करता है, सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत करता है और आयु-आरोग्य एवं बुद्धि की वृद्धि करता है ।

दुनिया के सज्जन भले ही मिठाई दें, पैसा दें, शादी करा दें, यह दें, वह दें, पर माया में ही फँसाते हैं लेकिन संत लोग वो दे देते हैं, जो चौरासी लाख जन्मों के पाप-ताप मिटाके जीव को जीते-जी मुक्ति का अनुभव करा देता है ।

कबीरजी तो पहले भी 'राम-राम' बोलते थे, पर जब रामानंद स्वामी ने उनको रामनाम की दीक्षा दी और जपने की विधि बता दी तो कबीरजी महापुरुष हो गये । ध्रुव को नारदजी ने **'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'** मंत्र गुरुमंत्र

नहीं मेरा राम
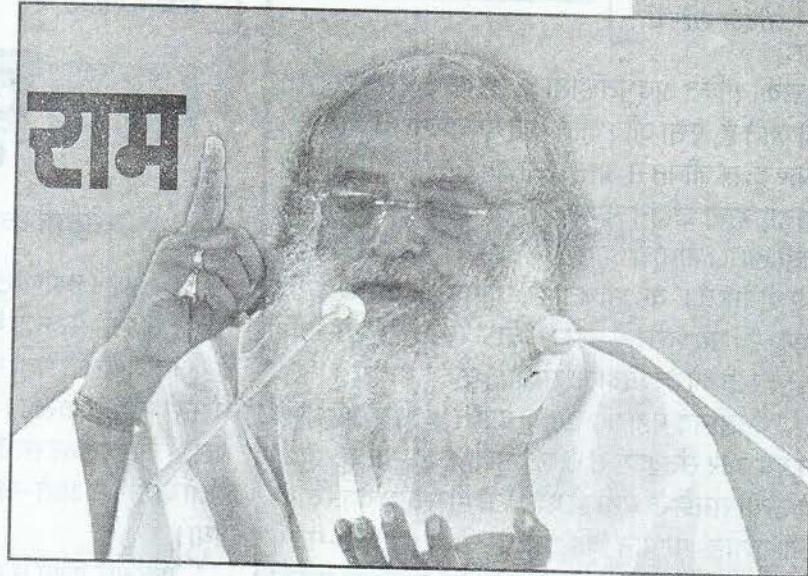
करके दिया तो ध्रुव गुरुतत्त्व में टिक गये।

नितानंदजी गुरुप्रदत्त मंत्र का जप करते। उनकी सुषुप्त शक्तियाँ जगीं, कई दिव्य अनुभव हुए। वे आय का कुछ हिस्सा कर-कसर से खर्च करते और शेष धन दान-पुण्य में लगाते। पर वैराग्य तीव्र हुआ तो नौकरी भी छोड़ दी और गुरु के पास आकर गुरुसेवा में जुट गये। सेवा करते-करते खूब परीक्षाएँ हुईं किंतु वे दृढ़ता एवं सच्ची लगन से लगे रहे।

जो भी साधक-भक्त भगवान को चाहता है, पुकारता है और दृढ़ विश्वास रखता है कि 'देर-सवेर परमेश्वर मुझे मिलेंगे क्योंकि मैं जप कर रहा हूँ। मुझे पता नहीं कि भगवान कैसे हैं फिर भी मिलेंगे जरूर।' तो भगवान उसका मार्गदर्शन अवश्य करते हैं। उसको संत-सान्निध्य में, सत्संग में भेज देते हैं, सुख-दुःख के अनुभवों से गुजार लेते हैं; फिर उसके हृदय में प्रकट हो जाते हैं।

उन तहसीलदार को भी परमात्मा की लीला ने कई उतार-चढ़ावों से पसार किया। जीवन में दुःख के, सुख के कई प्रसंग आये, निंदा के, स्तुति के कई प्रसंग आये, परंतु वे उन सबको सपना और साक्षी चैतन्य आत्मा को अपना समझ झेलते रहे।

फिर वे तहसीलदार नहीं रहे एक महान पुरुष, रेवाड़ी के सुविख्यात भगवत्प्राप्त संत हो गये। उनके उपदेश ऐसे कि भाई! क्या बताऊँ आपको! नितानंदजी कहते हैं :

मन इन्द्री पहुँचे जहाँ बो नहीं मेरा राम।
नितानंद गुण तीन से परे पीव मुकाम॥

'नितानंद नाम मेरे शरीर का है, मेरा नहीं। सत्त्व, रजस् और तमस् तीन गुण हैं। सत्त्वगुण सत्कर्म में, साधन-भजन में लगाता है, रजोगुण पाप और प्रवृत्ति में लगाता है तथा तमोगुण आलस्य, निद्रा बढ़ाकर जीव को पत्थर, पहाड़, पेड़, लता आदि नाना योनियों में भटकाता है। इन तीन गुणों से मेरा कोई लेना-देना नहीं। मेरा लेना-देना तो मेरे पिया परमात्मा के साथ है जो अनंत ब्रह्मांडों में और मुझमें व्यापा है, मेरा आत्मा होकर बैठा है, जहाँ मन, इन्द्रिय और शरीर आदि की भी पहुँच नहीं।'

काया के अस्थान में, भजन करे सब कोय।
नितानंद आतम भजन, कोटे मध्यें होय॥
होंठ जीभ हाले नहीं, जपे अजपा जाप।
नितानंद जीवन मुक्त, होत नाम प्रताप॥

'शरीर को 'मैं' और संसार को मेरा मानकर तो सब भजन करते हैं, पर ऐसा कोई विरला ही होता है जो अंतरात्मा का भजन करता है। ऐसे गुरुमुख का भजन जब गहरा हो जाता है तो फिर उसके होंठ, जिह्वा नहीं हिलती, उसका अजपा-जप चलता है।

भजन जब गहरा हो जाता है तो फिर उसके होंठ, जिह्वा नहीं हिलती, उसका अजपा-जप चलता है। उसकी शक्ति अद्भुत होती है, उसके अनुभव अद्भुत हो जाते हैं, ऐसा जीव जीते-जी मुक्तात्मा हो जाता है।

उसकी शक्ति अद्भुत होती है, उसके अनुभव अद्भुत हो जाते हैं, ऐसा जीव जीते-जी मुक्तात्मा हो जाता है। फिर दुःख जीवन में आते हैं तो वह उनसे प्रभावित नहीं होता, सुख जीवन में आते हैं तो वह उनसे आकर्षित नहीं होता। बीमारी आती है तो वह यह नहीं सोचता कि 'मैं बीमार हूँ।' वह सोचता है, 'बीमार यह नश्वर शरीर होता है। यह शरीर मैं नहीं। मैं तो सुख-दुःख, बीमारी-तंदुरुस्ती को देखनेवाला साक्षी, चैतन्य आत्मा हूँ।'

नितानंद महाराज भगवत्प्राप्ति के लिए संतशरण में गये और संतकृपा से उनके अज्ञान का पर्दा हट गया, वे ऊँची समझ के धनी हो गये। ऐसे ही मेरे गुरुदेव स्वामी लीलाशाह भगवान की सीधी-सादी, भोली-भाली दादी माँ भी ऊँची समझ की धनी थीं। जब बहुएँ उनकी मसखरी करतीं कि 'क्या बुढ़िया! सारा दिन खें-खें-खें करती रहती है' तो दादी माँ मेरे गुरुजी को गोद में लेकर खूब हँसतीं और बोलतीं : ''ओ लीलाराम! (मेरे गुरुजी का नाम पहले लीलाराम था।) ये बहुएँ जो मेरी मसखरी कर रही हैं, मेरी निंदा कर रही हैं न; ये मेरी निंदा नहीं कर रही हैं, ये तो मेरे हाड़-मांस के नश्वर शरीर की मसखरी-निंदा कर रही हैं। मैं तो शुद्ध-बुद्ध, चैतन्य, अजर, अमर आत्मा हूँ। ओ मेरे लीला! ये जो संसार के लोग शरीर को 'मैं' और मान-अपमान को सच्चा मान सुखी-दुःखी हो रहे हैं, यह तो लीला है उस लीलाधर की माया की।''

जीवात्मा का परमात्मा के साथ नित्य संबंध है। परमात्मा पहले था, अभी भी है और सदैव आपके साथ रहेगा। आप उससे संबंध तोड़ नहीं सकते। वह नित्य तत्त्व कहीं गया नहीं, स्वयं आपका आपा बनकर बैठा है। आप उसीको जानिये और उसको पहचानकर मुक्तात्मा हो जाइये। उसीको जानने के लिए, उसको पाने के लिए भूख जगाइये। संतों के अनुभव का पूरा फायदा उठाइये।

कूर्मदास

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

पैठण (महाराष्ट्र) में एक बालक को जन्म से ही हाथ-पैर नहीं थे, उसका नाम रखा गया कूर्मदास। वह जहाँ कहीं भी पड़ा रहता और लोग जो कुछ खिला देते उसीसे गुजारा करता। हाथ-पैर बिना का कूर्मदास पेट के बल से रेंग-रेंगकर संतों की कथा में पहुँच जाया करता था। संतों के संग में आते-जाते उसको भगवद्भक्ति का रंग लग गया।

एक बार कथा में उसने सुना कि पंढरपुर (महाराष्ट्र) में कार्तिक मास की एकादशी के दिन भगवान का दर्शन करना बड़ा पुण्यदायी माना जाता है। उसने ठान लिया कि 'मैं भी इस दिन पंढरपुर में भगवान के दर्शन करूँगा।' 'कार्तिक-एकादशी को तो अभी चार महीने हैं, पहुँच जाऊँगा...' यह सोचकर उसने हिम्मत की और पंढरपुर के लिए यात्रा शुरू कर दी। वह रोज पेट के बल से रेंगते-रेंगते एक कोस तक का रास्ता तय कर लेता था। भगवान की दया से प्रतिदिन शाम होते-होते कोई-न-कोई अन्न-जल देनेवाला उसे मिल ही जाता था।

इस तरह रेंगते-रेंगते वह चार महीने में लहुल गाँव तक पहुँच गया, वहाँ से पंढरपुर ७ कोस (लगभग २२ कि.मी.) दूर था। कार्तिक मास की दशमी तिथि हो गयी थी, दूसरे दिन एकादशी थी। वह तो दिनभर में मात्र एक कोस ही रेंग पाता था और सात कोस बाकी थे। क्या करता... किसी तरह भी एकादशी के दिन पंढरपुर नहीं पहुँच सकता था।

उसने इष्टदेव को याद किया और पंढरपुर जा रहे एक यात्री से कहा : ''भैया! मैं तो रेंगते-रेंगते विठ्ठल तक नहीं पहुँच सकता हूँ। दो शब्द लिखवाता हूँ, आप जरा अपने

साहसी होओ। मेरे बच्चों को सबसे पहले साहसी होना चाहिए। किसी भी दशा में सत्य के साथ थोड़ा-सा भी समझौता न करो। उच्चतम सत्यों का प्रचार करो। उन्हें दुनियाभर में बिखेर दो। मान खो बैठने अथवा अप्रिय संघर्ष उत्पन्न हो जाने का भय मत करो। यह निश्चित जान लो कि यदि तुम नाना प्रकार के प्रलोभनों के बावजूद सत्य से लगे रह सको तो तुममें ऐसी दैवी शक्ति आ जायेगी, जिसके समक्ष लोग तुमसे वे बातें कहते डरेंगे जिन्हें तुम सत्य नहीं समझते।

- स्वामी विवेकानंद

की भगवद्भक्ति

भगवान अगर कर्म का ही फल देंगे तो असहाय को सहायता कौन देगा ? हारे हुए को हिम्मत कौन देगा ? भूले को राह कौन दिखायेगा ?

हाथ से लिखकर विट्ठल तक पहुँचा दीजिये।''

कूर्मदास लिखवाने लगा : 'मेरे विट्ठल ! प्राणिमात्र के तारणहार !! सबके हृदय में होते हुए भी सबसे न्यारे, सबके प्यारे ! निराकार होते हुए भी साकार होने में आपको कोई देर नहीं लगती । हे सर्वसमर्थ ! यह दीन बालक प्रार्थना करता है कि मैं लहुल गाँव में पड़ा हूँ। कल एकादशी को पंढरपुर नहीं पहुँच सकता हूँ पर आप चाहें तो आपको यहाँ प्रकट होने में देर नहीं लगेगी । प्रभु ! इस अनाथ बालक को साकार रूप में दर्शन देने की कृपा करें। आपके लिए यह असंभव नहीं है।'

ऐसी प्रार्थना लिखवाते-लिखवाते कूर्मदास मानों, स्वयं प्रार्थना हो गया। यात्री तो चलता बना। एकादशी के दिन पंढरपुर में भगवान श्रीविट्ठल के दर्शन करके उस यात्री ने वह छोटी-सी चिट्ठी प्रभु के श्रीचरणों में डाल दी। बस, चिट्ठी का डालना और भगवान का नामदेव, ज्ञानदेव व साँवतामाली के साथ कूर्मदास के पास प्रकट होना ! कूर्मदास ने भगवान के श्रीचरणों में अपना सिर रख दिया।

भक्त भगवान के साथ तदाकार होकर जब प्रार्थना करता है तो भक्त की पुकार सुनकर भगवान प्रकट होने में देर नहीं करते। भक्त की श्रद्धा व पुकार और भगवान का अनुग्रह काम बना देता है !

आज भी पैठण-पंढरपुर मार्ग पर स्थित लहुल गाँव का श्रीविट्ठल भगवान का मंदिर भक्त कूर्मदास की दृढ़ श्रद्धा एवं भक्ति की खबर दे रहा है कि भक्त को चाहे हाथ नहीं हों, पैर नहीं हों पर यदि उसके पास दृढ़ भक्तिभाव है तो उसकी नैया किनारे लग जाती है । अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कभी निराश न हो, अपने को कभी अकेला न माने। भगवान की करुणा-कृपा सदा उसके साथ है। भगवान अगर कर्म का ही फल देंगे तो दुर्बल को बल कौन देगा ? पापी को गले कौन लगायेगा ? असहाय को सहायता कौन देगा ? हारे हुए को हिम्मत कौन देगा ? भूले को राह कौन दिखायेगा ? तू ही प्रेरणा देता है, पोषक ! पालक ! सहायक ! हे देव... भगवान न्यायकारी हैं बिल्कुल सच्ची बात है, पक्की बात है लेकिन भगवान दयालु भी हैं । जो दयालु है वह न्याय कैसे करेगा ? न्यायाधीश दया करे तो खूनी को जेल में कैसे भेजेगा ? न्याय करता है तो दयालु कैसे ? पर परमात्मा न्यायकारी भी हैं और दयालु भी हैं। **वे सर्वसमर्थ भी हैं और पराधीन भी हैं**। भक्त की भक्ति के आगे वे विवश हो जाते हैं। उन्होंने कहा भी है :

अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज।

साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥

'दुर्वासाजी ! मैं सर्वथा भक्तों के अधीन हूँ। मुझमें तनिक भी स्वतंत्रता नहीं है। मेरे सीधे-सादे, सरल भक्तों ने मेरे हृदय को अपने हाथ में कर रखा है। भक्तजन मुझसे स्नेह करते हैं और मैं उनसे।' **(श्रीमद्भागवत: ९.४.६३)**

परमात्मप्राप्ति के लिए आवश्यक चार बातें

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

जैसे केसरी सिंह बलपूर्वक पिंजरे से निकल जाता है, लुटेरों से अपना धन बचाकर पथिक खिसक जाता है, ऐसे ही संसार के आकर्षणरूपी लुटेरों से स्वयं को बचाकर जो परमात्मा में चित्त लगाता है, वह यहाँ तो सुखी रहता ही है, मरने के बाद परम सुखस्वरूप परमात्मा में एकाकार हो जाता है।

'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में वसिष्ठजी कहते हैं : 'हे रामजी ! आत्मतत्त्व का साक्षात्कार होता है, तब विचार से प्रयोजन नहीं रहता। सबमें, सब प्रकार, सब काल आत्मा की भावना करो अथवा जितना दृश्यभाव है सो सब त्याग करो तो जो शेष रहेगा वह भास आयेगा।'

सारा संसार मिथ्या और असार है, जो सार है उस पर बुद्धि टिकेगी तो कल्याण हो जायेगा। 'सबमें छुपा हुआ परमेश्वर एक है या कुछ नहीं है... कुछ नहीं है...' ऐसा जो कह रहा है, वही शेष है; उसीमें अपनी बुद्धि को लगाओ। बुद्धि को आत्मविषयिणी बना लो।

आनंद-ही-आनंद... माधुर्य-ही-माधुर्य...

जब तक संसार की कोई भी इच्छा है, तब तक समझना कि बंधन में हो। संसारी इच्छाएँ छूटीं तो मुक्तात्मा हो जाओगे। इसलिए संसार का पसारा करने की इच्छा मत करो।

बहुत पसारा मत करो, कर थोड़े की आस, बहुत पसारा जिन किया, वे भी गये निरास।

जैसे दलदल में फँसा हाथी बाहर निकलने के प्रयास में और अधिक धँसता जाता है, ऐसे ही 'यह करूँ... वह करूँ... इतना कर लूँ... इतना पा लूँ...' करते-करते इन्सान संसार में और फँसता चला जाता है, लेकिन जब मौत आकर गला दबोच लेती है तब सब किया-कराया यहीं रह जाता है।

चिता पर रुपये-पैसे, गहने-गाँठे, मकान-दुकान लेकर कोई नहीं जाता, सब छोड़कर ही जाना पड़ता है। जिन्हें छोड़कर जाना पड़े उन्हींकी चिंता में पच रहे हो। भगवान को पाने का तीव्र संकल्प करके संसार की इच्छा, वासना छोड़ दो। कोई इच्छा नहीं, केवल भगवान को पा लो, बस फिर कोई तनाव नहीं, कोई दुःख नहीं, कोई चिंता नहीं, कोई शोक नहीं... **तरति शोकं आत्मवित्।** आत्मवेत्ता सारे शोकों से, सारे दुःखों से तर जाता है। **तत्र कः शोकः को मोहः ?** जो केवल एक आत्मा को ही देखता है, एक भगवान को ही जानता है उसे शोक कहाँ, मोह कहाँ ?

कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से, जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।

चाहे कितना भी कमा लो, कितना भी पा लो, दुनिया का कितना भी जान लो परंतु तब तक दुःखों का अंत नहीं होता, जब तक उस सर्वेश्वर आत्मा को नहीं जाना।

सर्वेश्वर आत्मा को पाना, जानना कठिन नहीं है किंतु उधर की यात्रा नहीं की इसलिए कठिन लगता है। जैसे जिसने पढ़ने-लिखने का अभ्यास नहीं किया उसके लिए पढ़ना-लिखना कठिन है, जिसे गाड़ी चलाने का अभ्यास नहीं है, उसके लिए गाड़ी चलाना कठिन है। बाकी लाखों लोग शिक्षित हैं, लाखों लोग गाड़ी चलाते हैं उन्हें कठिन नहीं लगता। ऐसे ही करोड़ों लोगों का अंतरात्मा वैसा ही है, जैसा ज्ञानी का है। फर्क केवल इतना है कि ज्ञानी महापुरुष ने अभ्यास करके पा लिया है।

जैसे केसरी सिंह बलपूर्वक पिंजरे से निकल जाता है, रास्ते के लुटेरों से अपना धन बचाकर

पथिक खिसक जाता है, ऐसे ही संसार की मोह-माया से, संसार के आकर्षणरूपी लुटेरों से अपनी जान बचाकर जो परमात्मा में चित्त लगाता है, वह व्यक्ति यहाँ तो सुखी रहता ही है, मरने के बाद परम सुखस्वरूप परमात्मा में एकाकार हो जाता है।

पहली बात यह कि जिसको इसी जन्म में मुक्त होना है उसे चाहिए कि अपने सत्-चित्-आनंद स्वभाव की स्मृति रखे, उसीका श्रवण करे, उसीका मनन करे, उसीका चिंतन करे, उसीका ध्यान करे; अपने को मरने-मिटनेवाला शरीर न माने।

दूसरी बात है, जो ईश्वरीय तत्त्व को पाना चाहता है, उसे चाहिए कि सदैव सार्थक कर्म करे, निःस्वार्थ कर्म करे; निरर्थक कर्म न करे। निःस्वार्थ-निष्काम कर्म एवं निरर्थक कर्म दोनों में फर्क है। निष्काम कर्म अर्थात् फल पाने की आकांक्षा से रहित परहित के कार्य। निरर्थक कर्म अर्थात् निष्प्रयोजन कर्म। जिसके जीवन में निष्काम कर्म नहीं, सेवा नहीं उसका विकास भी नहीं होता। चाहे संसार में रहो, चाहे भगवान के रास्ते चलो परंतु विकास के लिए पहली शर्त है सेवा।

सेवा से अंतःकरण शुद्ध होता है जबकि राग-द्वेष से अशुद्ध होता है। अतः सबसे न्याययुक्त व्यवहार करना चाहिए। 'सबमें अपना परमात्मा है, सबका कल्याण हो, सबका मंगल हो, सबकी भलाई हो' - इस भाव से साधक का हृदय शीघ्र शुद्ध होता है। शुद्ध हृदय में ही ज्ञान की प्यास जगती है, शुद्ध हृदय में ही परमात्मा के प्यारे संतों के अनुभव को अपना अनुभव बनाने की योग्यता आती है, शुद्ध हृदय में ही ज्ञान का प्रकाश होता है।

तीसरी बात है, बाह्य-दृश्य जगत की सच्चाई को जानकर उसका त्याग कर दो। संसार स्वप्नमात्र है। छः महीने पहले वह ऐसा था - वैसा था, अब देखो तो स्वप्न... छः दिन पहले की बातें अब देखो तो स्वप्न। सब स्वप्न में सरकता जा रहा है - ऐसा समझकर ईश्वर में मन लगायें।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥

चौथी बात है, शास्त्र और संत की आज्ञा का तत्परता से पालन। जो शास्त्र और संत के सिद्धांत का तत्परतापूर्वक पालन करता है, वही शिष्य अपना कल्याण कर सकता है।

जो अपने जीवन में ईश्वर का ही चिंतन-मनन-स्मरण करता है, निष्काम कर्म करता है, संसार को स्वप्न मानकर उसकी वासना का त्याग करता है एवं शास्त्र और संतवचन का तत्परतापूर्वक पालन करता है- वह इसी जन्म में सदा के लिए सब दुःखों से, सब चिंताओं से, सब शोकों से पार जन्म-मरण को लाँघकर उस पद में स्थित हो जाता है, जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ब्रह्मवेत्ता हैं; उस ब्रह्म को पा लेता है, अपने परम स्वभाव, परम स्वरूप को पा लेता है।

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

जिस परम पद को प्राप्त होकर मनुष्य लौटकर संसार में नहीं आते, वही मेरा परम धाम है। **(गीता: १५.६)**

खलीफा हजरत उमर वेश बदलकर लोगों के बीच घूमा करते थे। देखते थे, किसीको कोई कष्ट तो नहीं है। एक बार वे किसी झोंपडी के पास से गुजर रहे थे। उन्होंने देखा, एक स्त्री फर्श पर बीमार पड़ी है। चूल्हे पर हाँडी चढ़ी है, पास में बच्चे भूख से तड़प रहे हैं। उन्होंने स्त्री के नजदीक जाकर पूछा : ''तुम बच्चों को खाने को क्यों नहीं देती ?''

स्त्री ने उनकी ओर देखा और बोली : ''इन्हें खिलाने को मेरे पास है क्या ?''

''इस हाँडी में क्या पक रहा है ?''

''मुझसे क्या पूछते हो ? अपने-आप क्यों नहीं देख लेते ?''

हजरत उमर ने देखा, उसमें खाली पानी उबल रहा था। स्त्री ने बच्चों को बहलाने के लिए यह तदबीर (युक्ति) की थी।

उमर ने कहा : ''तुम्हारे पास कुछ नहीं था तो तुम खलीफा के पास क्यों नहीं गयी ?''

स्त्री बोली : ''क्या खलीफा का यह फर्ज नहीं कि इसकी जानकारी रखें ?''

हजरत उमर ने सहमकर कहा : ''खलीफा के राज्य में इतने लोग हैं। वे आखिर हर किसीकी देखभाल कैसे कर सकते हैं ?''

स्त्री के चेहरे पर तनाव आ गया, बोली : ''अगर खलीफा मेरे पति को लड़ाई में भेज सकते हैं तो क्या उन्हें उसके स्त्री-बच्चों के खाने-पीने का इंतजाम खुद नहीं करना चाहिए ?''

बात सही थी। उमर ने फौरन शाही भण्डार से खाने का सामान मँगवाया, उनको खिलाया और आगे का सारा इंतजाम भी कर दिया।

श्वास को अंदर भरकर रोक देना इसे आभ्यंतर कुंभक कहते हैं । श्वास को पूर्णतया बाहर निकालकर बाहर ही रोके रखना इसे बाह्य कुंभक कहते हैं । कुंभक का उद्देश्य है श्वास की गति में अवरोध उत्पन्न करना।

विधि : पद्मासन, सिद्धासन या किसी सुविधाजनक आसन में बैठ जायें । कंबल अथवा ऊनी आसन पर बैठें । मस्तक, गर्दन और छाती एक सीधी रेखा में व आँखें अर्धोन्मीलित (आधी खुली, आधी बंद) रहें।

अब दोनों नथुनों से गहरा श्वास लें व उसे एक मिनट तक अंदर ही रोककर रखें । यह हुआ आभ्यंतर कुंभक । श्वास को धीरे-धीरे बाहर छोड़ दें । पूर्णतः बाहर निकल जाने पर ४० सेकंड तक उसे बाहर ही रोककर रखें । यह हुआ बाह्य कुंभक । इस प्रकार ७ बार आभ्यंतर व ७ बार बाह्य कुंभक करें । इस दौरान प्रणव (ॐ) अथवा गुरुमंत्र का मानसिक जप चालू रखें।

प्रारंभिक अवस्था में (कुंभक सीखने की शुरुआत में) आभ्यंतर व बाह्य कुंभक के बीच कुछ समय का अंतर जरूर रखें, अन्यथा थकान हो सकती है । आभ्यंतर कुंभक के बाद श्वास बाहर छोड़ने पर कुछ समय तक स्वाभाविक श्वास चलने दें । फिर दोनों नथुनों से श्वास पूर्णतः बाहर निकालकर बाह्य कुंभक करें । बाह्य कुंभक पूर्ण होने पर फिर कुछ समय तक श्वास स्वाभाविक गति से चलने दें । इससे फेफड़ों को आराम मिलेगा व श्वास अधिक समय तक रोकने में कष्ट का अनुभव नहीं होगा। कुछ समय तक दृढ़ता से नियमित अभ्यास करने पर आभ्यंतर कुंभक के बाद बाह्य कुंभक सहज में होने लगेगा।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि त्रिबंध के साथ कुंभक किया जाय तो वह पूर्ण लाभदायी सिद्ध होता है एवं चमत्कारपूर्ण परिणाम लाता है।

त्रिबंध में सर्वप्रथम मूलबंध करें यानी श्वास लेने से पहले गुदा को अंदर सिकोड़ लें; फिर उड्डीयान बंध करें अर्थात् नाभि के स्थान को अधिक-से-अधिक भीतर व ऊपर की ओर सिकोड़ लें; उसके बाद दोनों नथुनों से

इससे चित्तवृत्तियाँ शांत होती हैं, जीव अथाह शांति एवं आनंद का अनुभव करता है । जिस साधक का केवली कुंभक सिद्ध हो जाता है वह अपने जीवन में हुए व्यापक परिवर्तन का स्पष्ट अनुभव करता है ।

साधना का

आयुर्वेद में रोगों का हेतु अपक्व आहार-रस है और योगशास्त्र में 'निर्बल प्राण' है। मजबूत प्राणबलवालों पर रोगों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कमजोर प्राणबलवालों पर पड़ता है। प्राणायाम से प्राणबल की वृद्धि होती है।

खूब श्वास भरकर ठोड़ी को गले के बीच में जो खड्डा (कंठकूप) है, उसमें दबा दें - यह हो गया जालंधर बंध। अब आभ्यंतर व बाह्य कुंभक करने के पश्चात् प्रथम उड्डीयान बंध, फिर जालंधर बंध, फिर मूलबध खोलें।

केवली कुंभक

आभ्यंतर एवं बाह्य कुंभक के सम्यक् अभ्यास से एक ऐसी अवस्था आती है, जिसमें श्वास बिना प्रयास के अंदर अथवा बाहर स्वाभाविक ही रुक जाता है। इसे 'केवली कुंभक' कहते हैं। केवली कुंभक श्वास का विराम है। इससे चित्तवृत्तियाँ शांत होती हैं व जीव अथाह शांति एवं आनंद का अनुभव करता है। जिस साधक का केवली कुंभक सिद्ध हो जाता है वह अपने जीवन में हुए व्यापक परिवर्तन का स्पष्ट अनुभव करता है। वह अल्प निद्रा लेनेवाला, मिताहारी, जितेन्द्रिय, तेजस्वी और बलवान हो जाता है, साधक से सिद्ध बन जाता है।

अभ्यास करनेवाला ५-६ महीने में केवली कुंभक सिद्ध कर ले तो उसके लिए फिर कुछ भी असंभव नहीं रह जाता। उसके पास श्रद्धा से कोई मनौती माने तो उसकी भी मनोकामना पूरी होती है। केवली कुंभक तक की यात्रा न भी करो तो १ मिनट आंतर कुंभक और ४० सेकंड बाह्य कुंभक करके ८-१० प्राणायाम सभीको पहुँचना चाहिए - **ऐसा पूज्य बापूजी का कहना है।** इससे गृहस्थ जीवन में रोग, व्यर्थ खर्च और भय, शोक से बच सकते हैं। यह ईश्वरप्राप्ति में भी सहायक है।

'श्रीमद्भगवद्गीता' के चौथे अध्याय के २९वें एवं ३०वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण ने प्राणायाम को 'यज्ञ' की उपमा दी है। जो साधक ममता, आसक्ति व फलेच्छा का त्याग कर नियताहार करते हुए परमात्म-प्राप्ति के उद्देश्य से प्राणायाम करता है, वह कर्मबंधन से मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

विशेष ध्यान देने योग्य :

* प्राणायाम आदि किसी जानकार के मार्गदर्शन में ही करना चाहिए।

* स्नान के तुरंत बाद प्राणायाम नहीं करना चाहिए।

* प्राणायाम की सिद्धि के लिए आहार शुद्ध, सात्त्विक, स्निग्ध, पौष्टिक व सुपाच्य हो तथा नियत समय पर समुचित मात्रा में लिया जाय। अधिक भोजन व अधिक उपवास से कुंभक सिद्ध नहीं होता।

* पूरक (श्वास लेना), कुंभक व रेचक (श्वास छोड़ना) का अनुपात सहज हो। श्वास को जबरदस्ती रोककर न रखें। कुंभक का समय धीरे-धीरे बढ़ाते जायें। नियमित अभ्यास से आभ्यंतर कुंभक की अवधि डेढ़ मिनट तक व बाह्य कुंभक की अवधि एक मिनट तक बढ़ायी जा सकती है।

* नियत समय पर व नियमित संख्या में कुंभक करें। कुंभक की संख्या तथा अवधि बढ़ाने के बाद घटायें नहीं।

* प्राणायाम की सिद्धि के लिए ब्रह्मचर्यपालन अनिवार्य है।

* कुंभक करने से पूर्व नाड़ी-शोधन प्राणायाम करें यानी दायें नथुने से श्वास लें व बायें से छोड़ें। फिर बायें से लें और दायें से छोड़ें। इस प्रकार ८-१० प्राणायाम करने से शरीर की समस्त नस-नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं व गहरा श्वास लेने में तथा श्वास को अधिक समय तक रोकने में मदद मिलती है।

कुंभक का शरीर पर होनेवाला प्रभाव :

कुंभक अर्थात् प्राणनिग्रह की महिमा का वर्णन करते

विहंग मार्ग : कुंभक

हुए मनु महाराज कहते हैं :

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

'जिस प्रकार अग्नि में तपाने से स्वर्णादि धातुओं के मल जल जाते हैं, उसी प्रकार प्राणों को रोकने से इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।' **(मनुस्मृति : ६.७१)**

कुंभक की स्थिति में प्राणों के अवरोध से उत्पन्न गर्मी के कारण शरीर में संचित मलादि दोष पिघलने लगते हैं, जिन्हें वायु उनके स्थान से हटाके शरीर से बाहर निकाल देती है। इससे सिर से लेकर पैर तक सभी अंग-प्रत्यंगों व इन्द्रियों की शुद्धि होती है और वे अपना कार्य सुचारु रूप से करने लगती हैं। शारीरिक शुद्धि की अन्य कोई भी प्रक्रिया अथवा चिकित्सा-प्रणाली इतनी सूक्ष्म व प्रभावशाली नहीं है, जितने ये आभ्यंतर व बाह्य कुंभक हैं। इसलिए 'जाबालोपनिषद्' ने प्राणायाम को समस्त रोगों का नाशकर्ता कहा है।

मजबूत प्राणबलवालों पर रोगों का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कमजोर प्राणबलवालों पर पड़ता है। जैसे आयुर्वेद में रोगों का हेतु 'आम' अर्थात् अपक्व आहार-रस माना गया है, वैसे ही योगशास्त्र में 'निर्बल प्राण' माने गये हैं। प्राणायाम से प्राणबल की वृद्धि होती है जिससे रक्तसंचार सुचारु रूप से होने लगता है, फलतः शरीर की सारी प्रणालियाँ जैसे - पाचन, श्वसन, मलोत्सर्जन आदि सम्यक् रूप से कार्य करने लगती हैं।

कुंभक के अभ्यासी की प्राण-ऊर्जा नीचे से ऊपर की ओर गतिशील होने से वीर्य भी ऊर्ध्वगामी होता है। यह वीर्य प्राणायाम की उष्णता से ओज तथा तेज में परिणत होकर शरीर को पुष्ट, तेजस्वी व कांतिमान बनाता है।

हमारी आयु वर्षों पर नहीं बल्कि श्वासों की संख्या पर आधारित है। साधारण व्यक्ति एक मिनट में १५ बार श्वास लेता है। श्वास जितने कम खर्च होते हैं, आयु उतनी ही बढ़ती है। कुंभक श्वास को लम्बा, गहरा व लयबद्ध बनाता है।

आभ्यंतर कुंभक से आरोग्य तथा बल की वृद्धि होती है और बाह्य कुंभक से पाप, ताप, रोग व शोक निवृत्त हो जाते हैं। कुंभक के नियमित अभ्यास से हर व्यक्ति स्वस्थ व दीर्घजीवी होकर जीवन का वास्तविक आनंद प्राप्त कर सकता है।

(गुरु अर्जुनदेवजी की वाणी)

बीज मंत्रु हरि कीरतनु...

बीज मंत्रु हरि कीरतनु गाउ।
आगै मिली निथावे थाउ।
गुर पूरे की चरणी लागु।
जनम जनम का सोइआ जागु॥
हरि हरि जापु जपला।
गुर किरपा ते हिरदै वासै भउजलु पारि परला॥
नामु निधानु धिआइ मन अटल।
ता छूटहि माइआ के पटल।
गुर का सबदु अंम्रित रसु पीउ।
ता तेरा होइ निरमल जीउ॥
सोधत सोधत सोधि बीचारा।
बिनु हरि भगति नही छुटकारा।
सो हरि भजनु साध कै संगि।
मनु तनु रापै हरि कै रंगि॥
छोडि सिआणप बहु चतुराई।
मन बिनु हरि नावै जाइ न काई।
दइआधारी गोविद गुसाई।
हरि हरि नानक टेक टिकाई॥

'हरि का गुणगान ही बीजमंत्र है, मैं उसीका कीर्तन करता हूँ। इससे मुझ बेसहारे को भी सहारा मिलता है। पूरे गुरु की चरणसेवा से मेरी जन्म-जन्म की अज्ञानता दूर हुई है। मैंने हरिनाम का जप किया है; गुरुकृपा से मेरे हृदय में संसार-सागर से पार करवानेवाला परमात्मा निवास करने लगा है। जब मैं सुखों के भंडार हरिनाम का अटल ध्यान करता हूँ, तभी माया के बंधन छूटते हैं। गुरु का अमृत-रस रूपी शब्द पान करने से आत्मा निर्मल होता है। मैंने खोज-खोजकर यही निर्णय किया है कि हरिभक्ति के बिना छुटकारा नहीं। यह हरिभक्ति संतों के संपर्क में मिलती है और तभी तन-मन हरि के रंग में रँग पाता है। ऐ जीव ! तू अपनी चतुराई और बुद्धिमत्ता को छोड़। तेरे मन को हरिनाम के बिना और कोई सहारा नहीं। गुरु नानक कहते हैं कि जब गोविंद गुसाईं की कृपा होती है, तभी जीव को परमात्मा का संबल प्राप्त होता है।'

परिप्रश्नेन...

(बापूजी के सत्संग-प्रवचन से)

प्रश्न : भगवान सर्वत्र हैं, सदा हैं, सबमें हैं, कण-कण में समाये हैं, फिर भी छुपे क्यों रहते हैं ?

उत्तर : आपको उनके कण-कण में होने की आस्था नहीं है, केवल सुना है और बोल दिया। आपमें इतनी तीव्र श्रद्धा नहीं है, इतना दृढ़ विश्वास नहीं है, इतनी आत्मीयता नहीं कि 'वे और हम एक हैं' तथा उनको अपना, आत्मरूप से परम प्रिय नहीं मानते इसलिए छुपे हैं। नहीं तो उन हाजरा-हुजूर को प्रकट होने में देर नहीं लगती।

हमारे मन के विचाररूपी तरंगों की गहराई में वे हैं; तरंगें अच्छी-बुरी, छोटी-मोटी होती हैं उसको वे जानते हैं - इस प्रकार का विश्वास नहीं, आस्था नहीं तो उनके प्रति जितना दृढ़ प्रेम चाहिए, उतना नहीं है।

जैसे, पानी गर्म तो बहुत हो, ऊपर से कुछ-कुछ वाष्पीभूत होता भी दिख रहा हो लेकिन उबलता नहीं, क्यों ? क्योंकि 100^{0}c तक गर्म नहीं हुआ है। ऐसे ही परमात्म-श्रद्धा, परमात्म-आस्था, परमात्म-प्रेम, परमात्म-प्रीति 100% तक जग जाय, उसी समय भगवान प्रकट हो जायेंगे।

वो थे ना मुझसे दूर, न मैं उनसे दूर था।
आता न था नजर, तो नजर का कसूर था॥

प्रश्न : ऐसा कौन-सा साधन है जो सुगम-से-सुगम और कठिन-से-कठिन है ?

उत्तर : गुरुमंत्र का जप सुगम-से-सुगम और कठिन-से-कठिन साधन है। अगर उसकी महत्ता समझते हो, उसमें रसबुद्धि रखते हो, उसमें सर्वोपरि उच्चता की समझ रखते हो तो तुम्हारे लिए गुरुमंत्र का जप सुगम-से-सुगम हो जायेगा; नाम की कमाई सुगम-से-सुगम हो जायेगी और ऊँची-में-ऊँची पदवी तक पहुँचा देगी। अगर नाम की, गुरुमंत्र की महत्ता नहीं जानते हो तो जप में मन नहीं लगेगा।

जो वस्तु हम सचमुच पाना चाहते हैं, जो बिल्कुल उसके पास जाकर हमको बैठा दे उसे 'साधना' कहते हैं।

मजदूर कहते हैं कबीरजी से : ''हम पत्थर कूटेंगे, खेत-खलिहान में मजदूरी करेंगे किंतु यहाँ बैठकर भगवन्नाम नहीं ले सकते।'' जिनका मन नहीं लगता उन्हें ज्यादा कठिन लगता है और जिसके मन को ललक लग गयी, जो नाम की कमाई का महत्त्व समझ गया, उसके लिए भगवान के नाम का जप सुगम-से-सुगम है।

प्रश्न : बापूजी ! हम तो संसार में यूँ ही पच रहे हैं, झुलस रहे हैं। सारा दिन दफ्तर में सिर कूटो, शाम को घर आओ तो वहाँ भी झगड़े ! क्या करें, शांति ही नहीं है ?

उत्तर : तुम घर में प्रवेश करते हो और घर में झगड़ा या कुछ गड़बड़ हो रही हो तो तुम भी अपने हृदय में अग्नि पैदा मत करना, झुलस मत जाना। संबंधी, जो भी कुटुंबी हों उन्हें आँख मत दिखाना। तुम ॐ शांति-शांति, नारायण-नारायण बोलते जाओ, जो लड़ रहे हों उनके मुँह पर और घर में पानी छींटते जाओ तथा एक-दो घूँट पानी स्वयं पी लो।

८ फरवरी २००६

जया एकादशी

युधिष्ठिर ने भगवान श्रीकृष्ण से पूछा : भगवन् ! कृपा करके यह बताइये कि माघ मास के शुक्लपक्ष में कौन-सी एकादशी होती है, उसकी विधि क्या है तथा उसमें किस देवता का पूजन किया जाता है ?

भगवान श्रीकृष्ण बोले : राजेन्द्र ! माघ मास के शुक्लपक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम 'जया' है। वह पवित्र होने के साथ ही सब पापों को हरनेवाली उत्तम तिथि है तथा मनुष्यों को भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली है। इतना ही नहीं, वह ब्रह्महत्या जैसे पाप तथा पिशाचत्व का भी विनाश करनेवाली है। उसका व्रत करने पर मनुष्यों को कभी प्रेतयोनि में नहीं जाना पड़ता। इसलिए राजन् ! प्रयत्नपूर्वक 'जया' एकादशी का व्रत करना चाहिए।

एक समय की बात है। स्वर्गलोक में देवराज इन्द्र राज्य करते थे। देवगण पारिजात वृक्षों से युक्त नंदनवन में अप्सराओं के साथ विहार कर रहे थे। पचास करोड़ गंधर्वों के नायक देवराज इन्द्र ने स्वेच्छानुसार वन में विहार करते हुए बड़े हर्ष के साथ नृत्य का आयोजन किया। गंधर्व उसमें गान कर रहे थे, जिनमें पुष्पदन्त, चित्रसेन तथा उसका पुत्र - ये तीन प्रधान थे। चित्रसेन की स्त्री का नाम मालिनी था। मालिनी से एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो पुष्पवन्ती के नाम से विख्यात थी।

पुष्पदन्त गंधर्व को एक पुत्र था, जिसको लोग माल्यवान कहते थे। माल्यवान पुष्पवन्ती के रूप पर अत्यंत मोहित था। ये दोनों भी इन्द्र के संतोषार्थ नृत्य करने आये थे। इन दोनों का गान हो रहा था। इनके साथ अप्सराएँ भी थीं। परस्पर अनुराग के कारण ये दोनों मोह के वशीभूत हो गये। चित्त में भ्रांति आ गयी इसलिए ये शुद्ध गान न गा सके। कभी ताल भंग हो जाता था तो कभी गीत बंद हो जाता था। इन्द्र ने इस प्रमाद पर विचार किया और इसे अपना अपमान समझकर वे कुपित हो गये।

अतः इन दोनों को शाप देते हुए बोले : ओ मूर्खो ! तुम दोनों को धिक्कार है ! तुम लोग पतित और मेरी आज्ञा भंग करनेवाले हो, अतः पति-पत्नी के रूप में रहते हुए पिशाच हो जाओ।

इन्द्र के इस प्रकार शाप देने पर इन दोनों के मन में बड़ा दुःख हुआ। वे हिमालय पर्वत पर चले गये और पिशाचयोनि को पाकर भयंकर दुःख भोगने लगे। शारीरिक पातक से उत्पन्न ताप से पीड़ित होकर दोनों ही पर्वत की कंदराओं में विचरते रहते थे। एक दिन पिशाच ने अपनी पत्नी पिशाची से कहा : हमने ऐसा कौन-सा पाप किया है, जिससे यह पिशाचयोनि प्राप्त हुई है ? नरक का कष्ट अत्यंत भयंकर है तथा पिशाचयोनि भी बहुत दुःख देनेवाली है। अतः पूर्ण प्रयत्न करके पाप से बचना चाहिए।

इस प्रकार चिन्तामग्न होकर वे दोनों दुःख के कारण सूखते जा रहे थे। दैवयोग से उन्हें माघ मास के शुक्लपक्ष की एकादशी की तिथि प्राप्त हो गयी। 'जया' नाम से विख्यात वह तिथि सब तिथियों में उत्तम है। उस दिन उन दोनों ने सब प्रकार के आहार त्याग दिये, जलपान तक नहीं किया। किसी जीव की हिंसा नहीं की, यहाँ तक कि फल भी नहीं खाया। निरन्तर दुःख से युक्त होकर वे एक पीपल के समीप बैठे रहे। सूर्यास्त हो गया। उनके प्राण हर लेनेवाली भयंकर रात्रि उपस्थित हुई। उन्हें नींद नहीं आयी। वे रति या और कोई सुख भी नहीं पा सके।

सूर्योदय हुआ, द्वादशी का दिन आया। इस प्रकार उस पिशाच दम्पति के द्वारा 'जया' के उत्तम व्रत का पालन हो गया। उन्होंने रात में जागरण भी किया था। उस व्रत के प्रभाव से तथा भगवान विष्णु की शक्ति से उन दोनों का पिशाचत्व दूर हो गया। पुष्पवन्ती और माल्यवान अपने पूर्व रूप में आ गये। उनके हृदय में वही पुराना स्नेह उमड़ रहा था। उनके शरीर पर पहले जैसे ही अलंकार शोभा पा रहे थे।

वे दोनों मनोहर रूप धारण करके विमान पर बैठे और स्वर्गलोक में चले गये। वहाँ देवराज इन्द्र के सामने जाकर दोनों ने बड़ी प्रसन्नता के साथ उन्हें प्रणाम किया।

उन्हें इस रूप में उपस्थित देखकर इन्द्र को बड़ा विस्मय हुआ ! उन्होंने पूछा : बताओ, किस पुण्य के प्रभाव से तुम दोनों का पिशाचत्व दूर हुआ है ? तुम मेरे शाप को प्राप्त हो चुके थे, फिर किस देवता ने तुम्हें उससे छुटकारा दिलाया है ?

माल्यवान बोला : स्वामिन् ! भगवान वासुदेव की कृपा तथा 'जया' नामक एकादशी के व्रत से हमारा पिशाचत्व दूर हुआ है।

इन्द्र ने कहा : ...तो अब तुम दोनों मेरे कहने से

कैसा प्रेरक है अंतरात्मा !

व्रत मनुष्य की लौकिक और आध्यात्मिक उन्नति का सशक्त साधन है। व्रत-उपवास मनुष्य की बहिर्मुख वृत्ति को अन्तर्मुख करने में सहायक हैं।

'श्रीविष्णुधर्मोत्तरपुराण' में आता है :

व्रतोपवासैर्यैर्विष्णुर्नान्यजन्मनि तोषितः।
ते नरा मुनिशार्दूल ग्रहरोगादिबाधिनः॥

'जिन्होंने पूर्वजन्म में व्रत-उपवासों के द्वारा भगवान विष्णु को प्रसन्न नहीं किया, वे मनुष्य ही इस जन्म में ग्रह, रोग, व्याधि, कष्ट आदि से पीड़ित रहते हैं।'

हमारे धर्मप्राण भारतवर्ष में मानव के अलावा पशुओं द्वारा भी व्रतोपवास किये जाने की बात आती है। महात्मा आनंदस्वामी सरस्वती ने अपने प्रवचन में बताया था कि 'नालापानी ग्राम के निवासी ठाकुर रामसिंह का पालतू कुत्ता एकादशी के दिन कुछ नहीं खाता था। बाद में वह देहरादून स्थित तपोवन आश्रम में ही रहने लगा। हमने स्वयं एकादशी के दिन उसे रोटी खिलानी चाही, किंतु उसने छुआ तक नहीं।'

कुत्ते भी उपवास रखते हैं !!!

महात्मा आनंदस्वामी ने एक अन्य व्रतधारी कुत्ते के विषय में बताया कि 'मैं वर्षों तक आर्य संन्यासी स्वामी केवलानंद के आश्रम में रहा। वहाँ भी एक ऐसा अनूठा भगवद्भक्त कुत्ता था, जो सोमवार को उपवास रखता था। आश्रम के लोग प्रतिदिन की तरह उसके सामने रोटी और दूध रखते थे, किंतु सोमवार को न जाने कैसे उसे वार का पता चल जाता था, उस दिन वह उन्हें मुँह से छूने को भी तैयार नहीं होता था।

मेरठ के एक विद्वान शिक्षासेवी शास्त्रकाव्यतीर्थ सुखदेव ने एक अनूठे हनुमद्भक्त कुत्ते के बारे में बताया कि मेरी छोटी बहन का विवाह था। विवाह में मेरे मामा के ताँगे के पीछे-पीछे एक कुत्ता १२ कोस (लगभग ३८ कि.मी.) चलकर हमारे घर आया। मामाजी ने बताया कि यह कुत्ता बड़ा धर्मात्मा है। कभी मांस नहीं खाता, यह हनुमानजी का भक्त है, मंगलवार को व्रत रखता है।

भारत सदैव से अनूठा धर्मप्राण देश रहा है। यहाँ के पशु-पक्षी तक धर्माचरण करते रहे हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को धर्माचरण का, व्रत का संकल्प लेना ही चाहिए।

बरेली (उ.प्र.) के पास उँझानी में मंगलवार को व्रत रखनेवाले एक कुत्ते को (जो अभी भी जीवित होगा) पूज्य बापूजी ने सूर्योदय के समय खाने के लिए मिठाई-पेड़ा आदि दिया। उसके नहीं खाने पर पूज्य बापूजी ने वहाँ के लोगों से पूछा : ''क्यों नहीं खाता है ?'' तो गरीब बस्ती के लोगों ने कहा : ''आज मंगल तो नहीं है ?''

पूज्य बापूजी ने कहा : ''है तो मंगलवार।''

लोगों ने बताया : ''यह मंगल को व्रत रखता है।''

कैसा प्रेरक है अंतरात्मा। सूर्योदय के समय कोई बतानेवाला नहीं कि आज मंगलवार है, फिर भी पूर्वकाल में मंगल को व्रत किया होगा और मरते समय कुत्ते की प्रियता ने कुत्ते का चिंतन करा दिया होगा तो कुत्ते के शरीर में मंगल के व्रत का पुण्यमय ज्ञान तो प्रकाशित होता ही है। जिनको बैल में प्रियता रह गयी वे बैल बन गये। जिनको कुत्ते में प्रियता रह गयी वे कुत्ते बन गये। जिनको हिरण में प्रियता रह गयी वे हिरण बन गये।

धन्य हैं वे जो ईश्वरप्राप्ति के लिए किसी व्रत-उपवास का, मौन, जप, शास्त्र-अध्ययन का नियम ले लेते हैं। व्रत के बिना का जीवन बिना पतवार की नाव, बिना स्टेयरिंग और ब्रेक की गाड़ी की तरह इधर-से-उधर, उधर-से-इधर लुढ़क-लुढ़ककर खप जाता है।

सुधापान करो। जो लोग एकादशी के व्रत में तत्पर और भगवान श्रीकृष्ण के शरणागत होते हैं, वे हमारे भी पूजनीय होते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : राजन् ! इस कारण एकादशी का व्रत करना चाहिए। नृपश्रेष्ठ ! जिसने 'जया' का व्रत किया है, उसने सब प्रकार के दान दे दिये और सम्पूर्ण यज्ञों का अनुष्ठान कर लिया। इस माहात्म्य के पढ़ने और सुनने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल मिलता है।

यौवन सुरक्षा से राष्ट्र

प्रायः सभी धर्मों ने ब्रह्मचर्य का महत्त्व समझा है और उसका पालन करनेवालों की प्रशंसा की है परंतु धर्मनिरपेक्षता के नाम पर भोगवादी समाज का निर्माण होने से विश्व के सभी देशों में धर्म तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास हुआ है।

पिछले १०० वर्षों में पाश्चात्य देशों ने विज्ञान की उन्नति से प्रभावित होकर चारित्रिक और नैतिक मूल्यों का त्याग कर दिया है। उसका फल उनको भोगना पड़ रहा है। संयम का अनादर करके मुक्त साहचर्य (Free Sex) की हिमायत करनेवाले पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक सिग्मंड फ्रायड के अंधानुकरण से यूरोप और अमेरिका में मानसिक रोगियों की संख्या में भारी वृद्धि हुई है। इसका प्रमाण देते हुए अमेरिका के विद्वान लेखक मार्टिन ग्रोस अपनी पुस्तक 'The Psychological Society' में लिखते हैं :

१. न्यूयॉर्क शहर में दस वर्ष तक किये गये एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि करीब ८०% वयस्कों में मानसिक बीमारी का कोई-न-कोई लक्षण दिखायी देता है और २५% लोग तो वास्तव में मानसिक बीमारी से ग्रस्त हैं।

(संदर्भ : Srole, Leo, Langer, Thomas S. Et al Mental Health in Metropolis, The mid town Manhuttan study)

२. सन् १९७७ में अमेरिका के 'प्रेसिडेन्टस् कमीशन ऑन मेन्टल हेल्थ' ने सिद्ध किया कि हमारे मन की स्वस्थता हम मानते हैं उससे ज्यादा खराब है। २५% जितने अमेरिकन भारी भावनात्मक तनाव से पीड़ित हैं। करीब तीन करोड़ बीस लाख अमेरिकियों को मानसिक चिकित्सा की आवश्यकता है। (संदर्भ : Lyons Richard D.)

३. 'नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ मेन्टल हेल्थ' के मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि अमेरिका के अस्पतालों में पाँच लाख रोगी सीजोफ्रेनिया नामक मानसिक रोग से पीड़ित हैं और अन्य सत्रह लाख पचास हजार मानसिक पागलपन से ग्रस्त लोग अस्पतालों में प्रवेश नहीं पा सके हैं एवं करीब छः करोड़ अमेरिकियों का असामान्य व्यवहार कुछ अंश में सीजोफ्रेनिया से संबंधित है।

(संदर्भ : New York Mcgrow Hill, 1962)

४. १६ सितम्बर, १९७७ के 'दी न्यूयार्क टाइम्स' में एक समाचार छपा था, ''यू.एस. पेनल कहती है कि २ करोड़ या उससे अधिक लोगों को मानसिक चिकित्सा की जरूरत है।''

हालाँकि बाद में कार्ल गुस्तेव जुंग, एडलर जैसे मूर्धन्य वैज्ञानिकों ने फ्रायड की पोल खोल दी और मार्टिन ग्रोस जैसे कई विद्वानों ने फ्रायड के प्रभाव से समाज को मुक्त करने का प्रयास किया; फिर भी अमेरिका आज तक इस समस्या से मुक्त नहीं हो सका, अपने चारित्रिक मूल्यों का पुनरुत्थान नहीं कर सका।

जैसे किसी नदी पर बनाये गये विशाल बाँध को बिना उसकी उपयोगिता को समझे ही कोई तोड़ दे; फिर उससे होनेवाले महाविनाश को देखकर वह उसे रोकने के लिए कितना भी प्रयास करे पर वह बाँध फिर से बाँध नहीं सकता; वैसे ही धर्म ने जो नैतिक मूल्यों का बाँध सदियों के परिश्रम से बनाया था, उसे धर्मनिरपेक्षता के नाम पर तोड़ देने से पाश्चात्य देशों का जो महाविनाश हुआ उसे रोकने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं। नदी का बाँध तो दूसरे वर्ष फिर से बना सकते हैं पर मनुष्य के चित्त पर जो धर्म और नीति के संस्कारों का बाँध था, उसका पुनर्निर्माण पाश्चात्य जगत बरसों के बाद भी नहीं कर पाया और अभी तक उस महाविनाश को रोक नहीं पाया।

भोगवादी पाश्चात्य समाज में एक और समस्या का प्रादुर्भाव हुआ है। उसे 'कुँआरी माता' की समस्या कह सकते हैं। 'युनिसेफ रिसर्च सेन्टर, फ्लोरेन्स' के द्वारा इन्नोसन्टी रिपोर्ट कार्ड नं. ३ प्रकाशित किया गया। उसके अनुसार विश्व की दो तिहाई सामग्री का उत्पादन करनेवाले २८ देशों में हर साल बारह लाख पचास हजार किशोरियाँ (१३ से १९ वर्ष की उम्र की) गर्भवती हो जाती हैं। उनमें से पाँच लाख गर्भपात कराती हैं और सात लाख पचास हजार किशोरियाँ कुँआरी माता बन जाती हैं। १२ में से १० विकसित राष्ट्रों के ६६% से अधिक किशोर-किशोरियाँ यौन जीवन में प्रवेश कर लेते हैं। इन कुँआरी माताओं के कारण वहाँ गरीबी की समस्या पनप रही है। ऐसी किशोरियाँ प्रायः पढ़ाई छोड़ देती हैं। शिक्षा के अभाव से उनको नौकरी नहीं मिलती। फिर उनको मानसिक अवसाद से पीड़ित होकर पराधीन जीवन बिताना पड़ता है। उनके बच्चे भी पिता के न होने से सामाजिक अवहेलना का भोग बनते हैं, शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाते और फिर अपराधी या शराब के या दवाइयों के नशाखोर बन, वे समाज पर एक बोझ बन जाते हैं। अतः इन २८ में से १५ देशों ने इस समस्या से मुक्त होने के लिए कुछ प्रयास किये हैं। अमेरिका में हर साल प्रत्येक १००० किशोरियों में से ५२.१ किशोरियाँ माँ बन जाती हैं। यानि किसी हाईस्कूल में १००० किशोरियाँ पढ़ती हैं तो वार्षिक परीक्षा पूरी होने पर उनमें से ५२ किशोरियाँ अपने बच्चों के साथ अगली कक्षा में जाती हैं या पढ़ाई छोड़ देती हैं। अमेरिका में हर साल कुल ७,६०,१८५ किशोरियाँ कुँआरी माता बन जाती हैं।

छोटी उम्र में ही जो किशोर-किशोरियाँ यौन जीवन में प्रवेश पा लेते हैं, वे मानसिक अवसाद और भावनात्मक चिंता

के शिकार बन जाते हैं। अन्य विद्यार्थियों की अपेक्षा उनमें आत्महत्या का प्रमाण बढ़ जाता है। उनमें से कई तो एड्स और अन्य यौन रोगों के शिकार हो जाते हैं। अमेरिका में हर वर्ष करीब तीस लाख किशोर-किशोरियाँ यौन रोग से संक्रमित होते हैं। हर साल जो नये मरीज एच.आई.वी./एड्स से ग्रस्त पाये जाते हैं, उनमें से २५% तो २२ वर्ष से छोटी उम्र के होते हैं।

धर्मशास्त्र में जो निषिद्ध कर्म हैं, जैसे परस्त्रीगमन, व्यभिचार, अविवाहित जीवन में कामभोग - उन निषेधों का उल्लंघन करने पर प्रकृति ने मनुष्य को ऐसे रोग और ऐसी समस्याएँ दे दीं कि उन धर्मनिरपेक्षतावादी नास्तिकों को भी अब उन धार्मिक निषेधों का प्रचार करना पड़ता है। एड्स का प्रभाव रोकने के लिए अब धर्मनिरपेक्ष सरकारों को भी एकपत्नीव्रत या जीवनसाथी से वफादारी आदि का पाठ पढ़ाना पड़ता है। पर धार्मिक आस्था से लोग उन नियमों का जितना पालन करते थे, उतना पालन ये राजनेता नहीं करा सकते और उन बातों को माननेवालों को भी सिर्फ शारीरिक स्वास्थ्य का लाभ मिल सकता है, जबकि धर्म के द्वारा अनुशासित श्रद्धालु को पारलौकिक, आध्यात्मिक लाभ भी मिलते हैं।

धर्म ने जो नैतिक मूल्यों का बाँध सदियों के परिश्रम से बनाया था, उसे तोड़ देने से पाश्चात्य देशों का जो महाविनाश हुआ उसे रोकने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं।

इसका ज्वलंत उदाहरण इस समस्या को सुलझाने के अमेरिकन सरकार के प्रयास से मिलता है। इस समस्या के निवारण के लिए उन्होंने कई प्रयास किये। विद्यार्थियों को यौनशिक्षा देकर, गर्भनिरोधक साधन देकर और कुँआरी माताओं को दी जानेवाली सुविधाएँ बंद करके भी वे इससे निजात नहीं पा सके। अब पिछले कुछ समय से अमेरिकन जनता का और राजनेताओं का यह मानना है कि अविवाहित किशोरों को कामत्याग का, संयम का संदेश ही यौनशिक्षा के रूप में देना चाहिए और इस प्रचार में सन् १९९६ से जुलाई २००१ तक में अमेरिका की सरकार ने ४० करोड़ डॉलर से अधिक धन खर्च किया है। जो बात भारतीय ऋषि-मुनियों को हजारों वर्ष पहले ज्ञात थी कि ब्रह्मचर्याश्रम में विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य की शिक्षा देनी चाहिए वही बात अब अमेरिका के विद्वानों को समझ में आयी है लेकिन कुँआरी माता की समस्या से बरसों तक पीड़ित होने के बाद। भारत में भी जो लोग बच्चों को ब्रह्मचर्य से विपरीत यौनशिक्षा देने का प्रयास कर रहे हैं उनको भी अमेरिका के अनुभव से यह बात सीख लेनी चाहिए कि विद्यार्थियों को केवल ब्रह्मचर्य की शिक्षा ही देनी चाहिए। अमेरिका के ३३% स्कूलों में अब यही सिखाया जाता है। फिर भी इससे ३% से अधिक लाभ नहीं हुआ क्योंकि वे सिर्फ निषेधात्मक संदेश देते हैं। कामशक्ति को ऊर्ध्वगमन के द्वारा ओजस में परिवर्तित करके आध्यात्मिक अनुभूतियों के द्वारा व्यक्ति का पशु में से देव में परिवर्तन करने की कुंजियाँ तो भारत के महान संतों के ही पास हैं।

वर्तमान युग में जबकि भारत पर भी पाश्चात्य सांस्कृतिक आक्रमण हो रहा है, तब भारत के संतों ने ही 'युवाधन सुरक्षा अभियान' के द्वारा भारत के युवावर्ग की रक्षा की है। इन संतों के कारण ही भारत में पाश्चात्य देशों की 'कुँआरी माता' जैसी समस्या उत्पन्न ही नहीं हुई है।

जो भारतीय संस्कृति के प्रेमी हैं वे इस बात से धन्यता का अनुभव किये बिना नहीं रह सकते कि सनातन धर्म के ऋषि-मुनियों, संत-महात्माओं ने जो नैतिक एवं धार्मिक संस्कारों का सिंचन किया है, उसे पाश्चात्य भोगवादी सभ्यता की आँधी मिटा नहीं सकती। फिर भी इस देश के करोड़ों युवानों को वर्तमान पत्रों और पत्रिकाओं में तथाकथित सेक्सोलोजिस्टों तथा फ्रायड के अनुयायियों द्वारा गुमराह किया जा रहा है। अतः यह प्रत्येक संस्कृतिप्रेमी, राष्ट्रप्रेमी का नैतिक कर्तव्य है कि वह 'युवाधन सुरक्षा अभियान' में अपना महत्तम योगदान देकर उन महान ऋषियों और संतों के ऋण का एक अंश तो चुकाने का प्रयत्न करे।

इतना ही नहीं, जो लोग नास्तिक हों या तथाकथित धर्मनिरपेक्षतावादी हों, जो भारतीय संस्कृति से जुड़ी हर परंपरा को साम्प्रदायिक बताकर उसका उपहास करने में और पाश्चात्य विद्वानों के कैसे भी युक्तिहीन उपदेशों को सच्चा मानने में ही गर्व अनुभव करते हैं, उनको भी अब उनके पाश्चात्य गुरुओं के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करने के लिए उनका अनुसरण करना चाहिए और अविवाहित युवावर्ग को संयम का संदेश पहुँचाने में सहयोग देना चाहिए। 'यौवन सुरक्षा' जैसी पुस्तिकाओं का प्रचार करना चाहिए एवं युवावर्ग को गुमराह करनेवाले लेख जिन वर्तमान पत्रों या पत्रिकाओं में छपते हों उनका विरोध करना चाहिए। इसीमें राष्ट्र का कल्याण है, मानवता का कल्याण है, विश्व का कल्याण है।

(जो लोग Innocenti Report Card No.3 प्राप्त करना चाहें, वे www. unicef. ictc. org में देख सकते हैं।)

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

प्रह्लादजी द्वारा भगवान की स्तुति

हे अनंत ! आपने अपने भक्त नारदजी के वचनों को सत्य करने के लिए पिताजी को मारकर मेरे प्राणों की रक्षा की है। जिस समय असाधु बुद्धि से मेरे पिताजी ने तलवार लेकर मुझसे कहा कि बतला, तेरी रक्षा करनेवाला मेरे अतिरिक्त कौन ईश्वर है ? यदि नहीं बतलायेगा तो अभी तेरा सिर काट लेता हूँ। उसी समय आपने उनको मारकर मेरे प्राणों की रक्षा की है। मेरे ही क्या, इस सारे जगत के एकमात्र आप ही रक्षक हैं, इसके आदि में उत्पन्न करनेवाले, अंत में नाश करनेवाले और मध्य में रक्षा करनेवाले एकमात्र आप ही हैं। आप ही अपनी माया से इस विश्व को रचकर, इसके गुणों से प्रतीत होते हैं और उसके पश्चात् इसके एक-एक अंश में भी आप ही प्रविष्ट हैं।

हे ईश्वर ! जगत में सत् आप हैं और असत् भी आप ही हैं। अपनी और परायी वस्तुओं की बुद्धि जिस समय उत्पन्न होती है, उस समय आप ही की माया की लीला रहती है। विश्व की उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश आपकी लीला है। जिस प्रकार सभी वस्तुओं के उत्पन्न होने के समय बीज से वृक्ष और वृक्ष से बीज की उत्पत्ति अन्योन्याश्रयरूप से होती है, उसी प्रकार संसाररूपी वृक्ष के बीजरूप और आपके विराटरूप का यह संसार बीजरूप है। जिस समय महाप्रलयकाल आता है, आप उस समय इस विश्व को जल में रखकर योगदृष्टि से नेत्रों को बंद कर शयन द्वारा आनंद का अनुभव करते हैं, तुरीयावस्था को प्राप्त होकर सारे गुणों का संसर्ग छोड़ शयन करते हैं। हे स्वामिन् ! उसी समय अपनी माया-शक्ति से प्रेरित आपके इस लीलामय शरीर से वट-सदृश महाकमल की उत्पत्ति हुई और आप शयन से जागे। उसी कमल से ब्रह्माजी उत्पन्न हुए और उन्होंने उस समय आपके अतिरिक्त वहाँ कुछ नहीं देखा।

वे सौ वर्षों तक इस बात की चिंता करते रहें कि यह कमल कैसे उत्पन्न हुआ ? बिना बीज का यह वृक्ष कहाँ से आया ? ब्रह्माजी ने विस्मय को त्यागकर तप किया और तीव्र तप के प्रभाव से उनको ज्ञान प्राप्त हुआ एवं उनके हृदय के भाव शुद्ध हुए। भाव की शुद्धि होते ही जैसे भूमि में सुगंधि व्याप्त हो जाती है वैसे ही ब्रह्माजी को अपने आत्मा में ही अति सूक्ष्मभूत इन्द्रिय-अंतःकरण में ईश्वर के दर्शन हुए। भगवान का विराटरूप ब्रह्माजी ने देखा, जिसके हजारों सिर, हजारों चरण, हजारों हाथ, हजारों ऊरु (जाँघ) और हजारों मुख, नाक, कान, आभूषण एवं आयुध दिखलायी पड़े।

ऐसे मायामय स्वरूप को, जो साधुओं को योगदृष्टि से दिखायी देता है, ब्रह्माजी ने आपकी कृपा से देखा और वे परम आनंद को प्राप्त हुए। इतना ही नहीं, आपने ब्रह्माजी पर यह भी अनुग्रह किया कि हयग्रीव अवतार धारण कर वेदद्रोही महाबलवान मधु-कैटभ नामक दैत्यों को मारकर वेदों को लाकर ब्रह्माजी को दिया।

इसी प्रकार मनुष्य, पशु, ऋषि, देवता तथा जलचर के शरीर में अवतार धारण कर समय-समय पर आप जगत का नाश करनेवाले असुरों और मनुष्यों को मारते रहे हैं। हे महापुरुष ! आप सदैव सनातन धर्म की और कलि-प्रभाव से लुप्तप्राय धर्म की रक्षा करते हैं तथा युग-युग में सदा सत्त्वावच्छिन्नरूप धारण करते हैं।

(क्रमशः)

शीत ऋतु का व्यापक रोग : बिवाई

हाथ-पैर व शरीर की दारी (बिवाई) से बचने तथा उसे बढ़ने से रोकने हेतु ठंड में गर्म जुराबें व मौजे पहनें। गर्म पानी से स्नान करें, संपूर्ण शरीर की व पैरों के तलवों में खूब मालिश करें। उष्ण-स्निग्ध आहार लें, पैरों को गर्म पानी से धोकर एड़ियों में एरंड, कोकम, तिल का तेल या घी गर्म करके लगायें अथवा जात्यादि मलहम या तेल नियमित लगायें। राल, मोम, गेरू, घी, शहद, जौखार व गूगल को समभाग मिलाकर बनाया हुआ मलहम बिवाई में नियमित भरने से शीघ्र राहत मिलती है।

सालों पुरानी बिवाई हो, वायु प्रकृति के कारण हुई हो तथा चिकित्सा करने पर भी पूर्ण रूप से आराम नहीं मिलता हो - ऐसे रोगियों को भी ऊपर बतायी गयी औषधि आराम दे सकती है।

शीत ऋतु में विशेष तौर पर होनेवाला कफरोग

कफ के कारणों को जानकर आचरण किया जाय तो रोग को होने से पहले ही रोका जा सकता है। कफ प्रकृतिवाले लोगों को मंदाग्नि होने से विशेषरूप से कफ होता है। देर से उठने तथा दिन में सोने की आदत, अति आरामप्रिय या विलासी जीवन भी इसका कारण है। आहार में मधुर, नमकीन, चिकनाईयुक्त, शीत, गुरु व अधिक मात्रा में लिया गया आहार कफ उत्पन्न करता है।

कफ का रोगी तीखा, कड़वा व कसैला रस अधिक ले। मिर्च, काली मिर्च, हींग, लहसुन, तुलसी, पीपरामूल, अदरक, लौंग आदि का सेवन विशेषरूप से कर सकते हैं। आहार रूक्ष, लघु, अल्प व उष्ण गुणयुक्त लें, जिसमें बाजरा, बैंगन, सहजन, सुआ की भाजी, मेथी, हल्दी, राई, अजवायन, कुलथी, चने, कंकोडा (खेखसा), तिल-तेल, मूँग, बिना छिलके के भुने हुए चने (गु. दाळिया) का सेवन करें। उबालने पर आधा शेष रहा पानी और अनुकूल पड़े तो सौंठ के टुकड़े डालकर उबाला हुआ जल पीयें। हो सके तो पानी गर्म-गर्म ही पीयें। छाती, गले व सिर पर सेंक करें। नींद अधिक न लें।

औषध : भोजन के बाद हिंगादिहरड़ या संतकृपा चूर्ण का सेवन करें अथवा संतकृपा चूर्ण दिन में २ बार शहद के साथ लें। गजकरणी करें। सूर्यभेदी प्राणायाम करें।

✻ प्रातः गौमूत्र अथवा गौझरण अर्क (आश्रम में उपलब्ध) का सेवन समस्त कफरोगों का नाशक है।

षड्रस

'चरक संहिता' के विमान स्थान के पहले अध्याय में बताया गया है कि रस छः प्रकार के हैं - मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय। वे भली प्रकार उपयोग को प्राप्त होने पर शरीर की पालना करते हैं और उलटे (गलत) उपयोग से दोषों को बढ़ाते हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। ये ठीक हों तो शरीर के उपकारक होते हैं और विकार को प्राप्त हुए हों तो निश्चय ही नाना प्रकार के विकारों से शरीर को दुःखित करते हैं।

इनमें से एक-एक दोष को तीन-तीन रस पैदा करते हैं और तीन-तीन रस ही दोषों का उपशमन करते हैं। जो इस प्रकार हैं :

कटुतिक्तकषाया वातं जनयन्ति,

मधुराम्ललवणास्त्वेनं शमयन्ति;

कट्वम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति,

मधुरतिक्तकषायास्त्वेनच्छमयन्ति;

मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति,

कटुतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति।

वात को कटु, तिक्त और कषाय उत्पन्न करते हैं तथा मधुर, अम्ल और लवण रस उसे शांत करते हैं। पित्त को कटु, अम्ल और लवण उत्पन्न करते हैं तथा कषाय, मधुर और तिक्त रस उसे शांत करते हैं। कफ को मधुर, अम्ल और लवण रस उत्पन्न करते हैं तथा कटु, तिक्त और कषाय उसे शांत करते हैं। **(चरक संहिता : १)**

बवासीर के रोगियों से हार्दिक प्रार्थना

यह बताते हुए मुझे अत्यधिक हर्ष हो रहा है कि जुलाई २००५ की 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका में प्रकाशित 'बवासीर की उत्तम औषधि' लेख में दिये गये प्रयोग से मेरी २० साल पुरानी बवासीर जड़मूल से मिट गयी। इसके उपचार के लिए मैंने आज तक कई उपाय किये थे। एक प्रसिद्ध कंपनी की औषधि 'कैलास जीवन' की ट्यूब भी उपयोग में लाता था, परंतु उतना लाभ नहीं हुआ। अधिकतर लोग बवासीर के ऑपरेशन में हजारों रुपये खर्च डालते हैं। वे पूज्य बापूजी द्वारा बताये गये इस सुलभ उपाय को अवश्य आजमायें और इसका लाभ लें, ऐसी मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

- श्री जनार्दन वामनराव पाटील,
पूना (महा.)-४११००५.

['ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि]

इस बार पूज्यश्री की आत्मानंददायी अमृतवाणी की सत्संग-रसधारा के स्थल रहे - हरियाणा, राजस्थान, महाराष्ट्र और गुजरात।

२६ व २७ नवम्बर को हिसार (हरियाणा) में सत्संग-गंगा का प्रवाह हुआ। हिसार के अलावा दिल्ली, पंजाब तथा हरियाणा के दूर-सुदूर क्षेत्रों से आये श्रद्धालुवृंद इस सत्संग-गंगा में अवगाहन कर कृतकृत्य हुए।

पूज्यश्री ने २७ नवम्बर को उत्पत्ति एकादशी के अवसर पर शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक उन्नति हेतु जीवन में व्रत की आवश्यकता पर जोर देते हुए बताया कि प्रतिपदा से अष्टमी तक जीवों के शरीर में जलीय अंश का क्रमशः क्षय होता है। नवमी से पूर्णिमा व अमावस्या तक जलीय अंश बढ़ता है। एकादशी को चावल जैसे जलीय अंश की अधिकतावाले अन्न का सेवन रोग का कारण बनता है। अतः इस दिन चावल व जलीय अंश की अधिकतावाला अन्न नहीं खाना चाहिए।

८ दिसम्बर को रेलमगरा और नाथद्वारा (राज.) के भक्तों को दर्शन-सत्संग का प्रसाद वितरण करते हुए पूज्यश्री झीलों की नगरी उदयपुर (राज.) पहुँचे। यहाँ ९ से ११ दिसम्बर तक ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद बापूजी की अमृतवाणी से निःसृत आत्मसुधा का रसपान श्रद्धालुओं ने किया। श्रद्धालुओं की बड़ी संख्या को देखते हुए विशाल पंडाल में एल.सी.डी. प्रोजेक्टर तथा टी.वी. सेट लगाये गये।

महिलाओं द्वारा प्रयोग की जानेवाली लाली-लिपस्टिक पर करारा व्यंग्य करते हुए लोकमांगल्य के इच्छुक बापूजी ने स्नेहभरी वाणी में कहा कि 'शबरी ने, मीरा ने कौन-सी लाली-लिपस्टिक लगायी थी?'

पूज्यश्री ने प्लास्टिक की बिन्दी के स्थान पर चंदन, हल्दी, कुमकुम, सिंदूर या तुलसी व पीपल के मूल की मिट्टी लगाने पर जोर दिया, जिससे प्रसन्नता, सात्त्विकता, शोभा व तेज बढ़ता है तथा मन पुण्यमय बनता है। प्लास्टिक की बिन्दियों को चिपकाने में जानवरों की हड्डियों का उपयोग होता है। ऐसी अशुद्ध बिन्दी अपने शिवनेत्र पर लगाकर क्यों हानि मोल लेना?

११ दिसम्बर की रात व १२ दिसम्बर को पूज्यश्री का प्रवास औरंगाबाद (महा.) में रहा। यहाँ ब्रह्मलीन जनार्दन स्वामी महाराज की १६वीं पुण्यतिथि के अवसर पर उनके शिष्य श्री शांतिगिरि महाराज ने अपने ९ वर्षों का मौन पूज्यश्री की उपस्थिति में खोला। 'जय हनुमान धर्म संस्कार समारोह' में उपस्थित लाखों तितिक्षु श्रद्धालुओं पर पूज्यश्री ने हेलीकॉप्टर से पुष्प और सात समुद्रों का पवित्र जल बरसाया। ब्रह्मनिष्ठ बापूजी की मनोहारी, आत्मस्पर्शी सत्संगवर्षा से विराट श्रद्धालु-समुदाय मंत्रमुग्ध हो उठा।

१५ दिसम्बर को मार्गशीर्ष पूर्णिमा और दत्तात्रेय जयंती का युगल पर्व अमदावाद और सांताक्रूज (मुंबई) में भी मनाया गया।

गुजरात व निकटवर्ती प्रांतों के पूर्णिमा व्रतधारी साधकों ने अमदावाद आश्रम में दर्शन-सत्संग प्राप्त कर व्रत पूर्ण किया तो महाराष्ट्र व उसके आस-पास के राज्य में रहनेवाले व्रतनिष्ठ साधकों ने मुबई में। पूज्यश्री दोपहर को ही विमान द्वारा अमदावाद से मुंबई पहुँचकर सीधे सत्संगस्थल पर पहुँचे। लोकलाड़ले बापूजी के व्यासपीठ पर पहुँचने भर की देर थी कि वहाँ बेसब्री से इंतजार कर रहे हजारों चेहरे खुशी से दमक उठे, जय-जयकार से सत्संग-पंडाल गूँज उठा। महानगरवासियों में हर्षोल्लास की लहरें हिलोरे लेने लगीं। १५ से १८ दिसम्बर तक आयोजित इस ज्ञान-भक्ति योग वर्षा में विराट श्रद्धालु समुदाय, मायानगरी-व्यस्तनगरी के वासी ब्रह्मनिष्ठ संतश्री की आत्मसुधामयी वाणी के रसपान से मुग्ध हुए। पूज्यश्री ने उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत व उपनिषदों के उच्च ज्ञान को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी। हजारों लोगों ने पूज्यश्री के समक्ष गुटखा-पान मसाला आदि व्यसन-त्याग का संकल्प लिया। धूप में खुले सिर रहने को हानिकारक बताते हुए बापूजी ने कहा कि 'इससे स्मरणशक्ति, नेत्रज्योति और ज्ञानतंतुओं को हानि होती है, बुढ़ापा जल्दी आ जाता है।'

२० दिसम्बर को बोइसर (महा.) और वापी आश्रम (गुज.) में दर्शन-सत्संग का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तथा पुंसरी (गुज.) में पूज्यश्री के करकमलों से गुरुमंदिर का उद्घाटन हुआ।

हर वर्ष की भाँति इस वर्ष भी सूरत आश्रम (गुज.) में 'ध्यान योग साधना शिविर' का आयोजन हुआ। २३ से २६ दिसम्बर तक चले इस साधना शिविर के प्रथम २ दिन विद्यार्थियों के लिए थे। जिसमें गुजरात के विभिन्न भागों के अलावा महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा सहित कई राज्यों के छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। प्रथम सत्र में चंचल और बहिर्मुख नजर आनेवाले विद्यार्थीवृंद अगले ही सत्र में अनुशासित व अन्तर्मुख नजर आये। ब्रह्मनिष्ठ-ध्याननिष्ठ पूज्य बापूजी के निर्देशन में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता के गुर उन्होंने सीखे। पूज्यपाद बापूजी ने व्यक्तित्व विकास, बौद्धिक विकास के साथ आत्मिक विकास के संस्कारों से भी बच्चों को संस्कारित किया तथा माता, पिता, गुरुजनों के साथ समाज व राष्ट्र के लिए उपयोगी बनने की कुंजियाँ भी बतायीं।

राउरकेला (उड़ीसा), फैजाबाद (उ.प्र.) व रन्तलेई, जि. अनगुल (उड़ीसा) में गरीबों हेतु भोजन-प्रसाद (भंडारे) का आयोजन। राउरकेला (उड़ीसा) में कम्बल-वितरण तथा रन्तलेई में संकीर्तन यात्रा का भी आयोजन किया गया।

बुरहानपुर (म.प्र.) के गिट्टी खदानों के मजदूरों में मिठाई-वितरण।

इलाहाबाद (उ.प्र.) के गरीब बच्चों में मिठाई व पटाखों का वितरण।

नासिक (महा.) के गरीबों में बर्तन व अनाज वितरण।

बेरमो, जि. बोकारो (झारखण्ड) जेल में हुए 'कैदी उत्थान कार्यक्रम' में हास्य प्रयोग करते कैदी।

दादरी, जि. गौतमबुद्ध नगर (उ.प्र.) में विद्यार्थियों में निःशुल्क गणवेश-वितरण।

उदासा, जि. नागपुर (महा.) के गरीबों में बर्तन व वस्त्र वितरण।

लासलगाँव, जि. नासिक (महा.) में 'निःशुल्क दंत चिकित्सा शिविर।'

अस्पताल में फल व सत्साहित्य वितरण - कोरबा (छ.ग.)।

अन्तुलिया, जि. अनगुल (उड़ीसा) में 'मलेरिया चिकित्सा कार्यक्रम' अंतर्गत निःशुल्क दवा-वितरण।

रोहिड़ा, जि. सिरोही (राज.) में सत्संग एवं 'निःशुल्क चिकित्सा शिविर' का आयोजन।

कोतवालगुड़ा, जि. रंगारेड्डी (आं.प्र.) में भंडारा, जिसमें पटाखे, मिठाई व दक्षिणा वितरण भी किया गया।

पूज्य बापूजी के सत्संग की झाँकियाँ

सूरत (गुज.)

सांताक्रुज (मुंबई)

हिसार (हरि.)

औरंगाबाद (महा.)

'ब्रह्मलीन जनार्दन स्वामी की १६वीं पुण्यतिथि पर वेरूल, औरंगाबाद (महा.) में आयोजित इस समारोह की पूर्णाहुति और मेरे ९ वर्षों के मौन की पूर्णाहुति पूज्य बापूजी की अध्यक्षता में हो एवं जनता-जनार्दन को ब्रह्मज्ञान का सत्संग मिले' - ऐसा शांतिगिरिजी महाराज का शुभसंकल्प, मनोरथ सफल हुआ। साधकों ने, भक्तों ने सत्संग से साधना की कई युक्तियाँ पायीं और ज्ञान-भक्ति रस का आस्वादन किया।

REGISTERED UNDER RNI NO. 48873/91. PERMITTED TO POST AT RISHI PRASAD PSO BETWEEN 2nd TO 15th OF E.M. UNDER POSTAL REGD. NO. GAMC 1132, LICENCED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. 207. BOTH ISSUED BY SSP-AHD VALID UPTO 31-12-2008. BACK ISSUE POSTING FROM PSO AHD. * MBI PATRIKA CHANNEL MUMBAI 01 WITHOUT PRE-PAYMENT LIC. NO. NW-9, REGD. NO. G2/MH/MR-NW-57/2006-08. POSTING ON 9th & 10th OF E.M.